ISSN : 2321-3922
अक्टूबर-2024
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-12 अंक-39
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

# सुसंभाव्य

## हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

# सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–दिसम्बर–2024

**प्रकाशन : 27 जनवरी 2013**

RNI No. : BIHHIN05394/2015

ISSN - 2321-3922

वर्ष–12, अंक–39

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450



स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

**श्री दयानन्द जायसवाल**

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

**सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल**

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
अक्टूबर–दिसम्बर–24

# सुसंभाव्य

## हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

## आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल 2025 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

**सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल**
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

# अनुक्रम


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. | पुरोवाक् | – | संस्थापक की कलम से – दयानन्द जायसवाल | 5 |
| 2. | समीक्षा | – | प्रेम, प्रतिरोध और लोकजीवन के यथार्थ की गजलें – डॉ. दिनेश अहिरवार | 6 |
| 3. | समीक्षा | – | गहन अनुभूतियों की कहानियों का संग्रह 'वांग छी' – डॉ. उपमा शर्मा | 8 |
| 4. | समीक्षा | – | कठुआ चिंतन – अतुल्य खरे | 9 |
| 5. | समीक्षा | – | लघुकथा में आलोचना की त्रिवेणी बहती है – प्रो. रूप देवगुण | 10 |
| 6. | समीक्षा | – | चिंतन के नए आयाम : जयकारी – अश्विनी कुमार दुबे | 11 |
| 7. | समीक्षा | – | इति दुविधा कथा : भारतीय मध्य वर्ग के संघर्ष व अन्तर्द्वन्द्व की बहुरंगी कथाएँ – डॉ. नवीन सिंह | 13 |
| 8. | समीक्षा | – | राष्ट्र को सर्वोत्तम बनाने की कवायत है : नदी बहती रही – रमेश खत्री | 14 |
| 9. | समीक्षा | – | स्मृतियों की असाधारण संवेदना – रेखा भाटिया | 16 |
| 10. | समीक्षा | – | शंकर दयाल ओझा की कृतियाँ – भगवती प्रसाद द्विवेदी | 17 |
| 11. | समीक्षा | – | आसन्न अतीत के सुरक्षित पड़े अँधेरे में प्रवेश – डॉ. मधु संधु | 18 |
| 12. | समीक्षा | – | जुझारू और जीवन्त व्यक्ति की खूबसूरत दास्तां : कुछ आँसू और कुछ मुस्कानें – सुमन सिंह चंदेल | 20 |
| 13. | समीक्षा | – | कपास कहानी संग्रह – सोनल मंजूश्री ओमर | 22 |
| 14. | समीक्षा | – | साहब का वसंत – प्रमोद त्रिवेदी पुष्प | 23 |
| 15. | समीक्षा | – | जीवन एक बहती धारा – जसविन्दर कौर बिन्द्रा | 24 |
| 16. | समीक्षा | – | समकालीन आवाज में अशोक सिंह की चयनित कविताएँ – ब्रजकिशोर पाठक | 26 |
| 17. | कविता | – | सिमटता आदमी – आकांक्षा यादव | 27 |
| 18. | आलेख | – | हिन्दी भाषा राष्ट्र की संजीवनी है – डॉ. नलिनी श्रीवास्तव | 28 |
| 19. | कविता | – | हमारे गाँव का चबूतरा – तेजनारायण राव | 29 |
| 20. | आलेख | – | नोबेल पुरस्कार प्रदायी समिति द्वारा हिन्दी भाषा और लेखकों की अनदेखी – मनोरंजन सहाय सक्सेना | 30 |
| 21. | कविताएँ | – | पानी/ यथार्थ/ आएगा बसंत – टीकेश्वर सिन्हा/ प्रिया देवांगन प्रियु/ पुष्पेष कुमार | 32 |
| 22. | आलेख | – | चलते रहने का नाम जिन्दगी है – मृत्युंजय कुमार मनोज | 33 |
| 23. | आलेख | – | संत कबीर दास की भक्ति – नमिता वैश्य | 34 |
| 24. | कविताएँ | – | पयोधि ने पुकारा था/ समस्यापूर्ति/ – सावित्री शर्मा 'सवि'/ गिरेन्द्र सिंह भदौरिया | 36 |
| 25. | आलेख | – | वीरांगना भोगेश्वरी फुकनानी – ज्योत्सना अस्थाना | 37 |
| 26. | कविताएँ | – | मातृशक्ति को समर्पित – सुभाष चन्द्र झा | 38 |
| 27. | आलेख | – | गुणात्मक सुधार और मूल्यांकन की महती आवश्यकता – ज्ञानीचोर | 39 |
| 28. | कविता | – | बदरी के संग लिपट रहा – डॉ. पुष्पलता | 40 |
| 29. | चिंतन | – | राष्ट्रवाद के प्रस्तोता : डॉ. पशुपतिनाथ – डॉ. अवन्तिका शर्मा | 41 |
| 30. | कविता | – | जीवनरक्षक – अवन्तिका तूनवाल 'अर्वान' | 45 |
| 31. | कविता | – | ग्रास रूट – अशोक गुजराती | 45 |
| 32. | कहानी | – | अस्मि – डॉ. मलिक राजकुमार | 46 |
| 33. | कहानी | – | वरदान – सुभदा मिश्रा | 48 |

# मेरा यह चेहरा

मेरा यह चेहरा
धुलता है जाने किस अथाह गम्भीर, साँवले जल से
झुके हुए गुमसुम टूटे हुए घरों के
तिमिर अतल से
धुलता है यह मन
रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु गम्भीर महान अस्तित्व
महकता है लगातार
मानो खंडहर-प्रसारों में उद्यान
गुलाबी-चमेली के, रात्रि-तिमिर में
महकते हों, महकते ही रहते हों हर पल
किंतु वे उद्यान कहाँ हैं
अँधेरे में पता नहीं चलता
मात्र सुगन्ध है सब ओर
पर उस महक-लहर में
कोई छुपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता
छटपटा रही है, छटपटा रही है।

रामधारी सिंह दिनकर

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

# संस्थापक की कलम से

मनुष्य लगातार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काम करता रहता है और अपने को सब के साथ संबद्ध करने के लिए प्रयत्नशील होता है। मनुष्य इतिहास में स्थानीय या व्यक्ति की अपेक्षा शाश्वत या सार्विक मनुष्य को देखना चाहता है। विश्व साहित्य में मनुष्य अपनी आत्मा के आनन्द को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। चाहे मनुष्य का वर्णन अस्वस्थ रूप में या भोगी अथवा योगी रूप में हुआ हो उसकी अंतःप्रेरणा एक ही होती है कि विश्व के साथ उसके संबंध के आनंद को प्रकट करे। इस संबंध सूत्र की उपलब्धि के लिए ही साहित्य में हम प्रवेश करते हैं। भारतीय साहित्य भारतीय जनता की स्मरणीय अभिव्यक्तियों का समाहार है। यह सत्ता राजनीतिक अनिवार्यता से निर्धारित नहीं हुई वरन् समुदाय की भावना से निर्धारित हुई है जो भावना सदियों से हमारे भीतर मौजूद है। समुदाय की इस भावना से प्राप्त शक्ति भारतीय जनता और उसके क्रियाकलापों को समायोजित करती है और इसीलिए भारतीय साहित्य में लोक और शास्त्र दोनों एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से संबद्ध दिखाई पड़ते हैं। परिणामतः यहाँ शास्त्र का अनुशासन, आदर्श की अभिव्यक्ति, लोक की चुनौती और लोक से प्रेरित त्रासदी की अभिव्यक्ति सब इकट्ठे दिखाई पड़ते हैं। समुदाय की यह भावना न तो उपनिवेशवाद की प्रक्रिया है, न ही राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम। यह एक सार्वकालिक यथार्थ है और वह साहित्य मानव मनों का मिलन, प्रेम, सौहार्द, समझदारी का प्रसार तथा समुदाय की भावना का प्रसार करता है।

भारतीय साहित्य का प्राचुर्य और वैविध्य तो अपूर्व है ही, उसकी मौलिक एकता और भी स्मरणीय है। प्रत्येक भारतीय भाषा में रचित साहित्य का अपना स्वतंत्र और प्रखर वैशिष्ट्य है जो अपने प्रदेश के व्यक्तित्व से मुद्रांकित है। जिस प्रकार अनेक धर्मों, विचारधाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है, इसी प्रकार और इसी कारण अनेक भाषाओं और अभिव्यञ्जना पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसंधान भी सहज संभव है। दरअसल भारत में भाषाएँ अनेक हैं मगर साहित्यिक संसार एक है। एक ही प्रकार के रूपकों, प्रतीकों, मिथकों, अनुश्रुतियों, परिपाटियों तथा नियमों का एक सर्वमान्य निकाय पिछले हजारों वर्षों में विकसित होकर भाषिक, गैरभाषिक तथा प्रादेशिक भिन्नताओं के बावजूद भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य की एकरूपता को प्रकट करती रही है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में कहा जाता है कि साहित्य मात्र भाषिक अभिव्यक्ति नहीं है, यह एक सुन्दर अभिव्यक्ति है और इसीलिए शब्द और अर्थ के 'साहित्य को विशिष्ट होना पड़ता है। इस प्रकार से साहित्य वस्तु और अभिव्यक्ति के बीच एक मनोहारी सम्मेयात्मक स्थिति है और जो अन्ततः साहित्य का सम-अर्थक है। कवि की अभिव्यक्ति उसकी आत्मा की अभिव्यक्ति होती है और वह उन्हीं आत्माओं पर अपना प्रभाव डालती है जो उस अभिव्यक्ति को ग्रहण करने के लिए तैयार हैं। किसी एक कृति के मूल्यांकन के लिए यह आवश्यक है कि आलोचक अपने को कवि की स्थिति में प्रस्तुत करे अथवा उसके दृष्टिकोण को ग्रहरण करे। अगर कवि सृजन करता है तो आलोचक उसका पुनःसृजन करता है और चूँकि मूल्यांकन परक क्रिया पुनः सृजनात्मक होती है इसीलिए वह अनिवार्य रूप से सृजनात्मक क्रिया के समरूप होती है। इनमें अंतर परिस्थितियों की आसादृश्यता पर निर्भर है क्योंकि सृजनात्मक साहित्य निश्चयात्मक एवं आलोचना ग्रहणशील होती है। अभिनवगुप्त ने कहा है कि 'भाषा एवं शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त सहृदय में वह शक्ति अवश्य होनी चाहिए जिसकी सहायता से वह काव्यात्मक सृजन के साथ अपना तादात्म्य कर सके।'

वस्तुतः विश्व साहित्य साहित्य की सार्वभौम परिकल्पना है। यह राष्ट्रीय और भाषिक सीमाओं से परे उसको समग्रता में ग्रहण करती है। इसकी अभिव्यक्ति के माध्यम का निर्माण सार्वभौम भाषिक रूपों से होता है। यह लोकमानस के राग-विराग के सहज वाहक होने के कारण विविध भाषिक भेदक विशेषताओं से सर्वथा मुक्त होता है। विश्व साहित्य शास्त्र की संकल्पना ऐसे सिद्धांत सूत्रों और नियमों पर की जा सकती है जो देश, काल, परिस्थिति, भाषायी साहित्य का ही नहीं बल्कि प्रत्येक देश, काल एवं भाषा के साहित्य का विवेचन-विश्लेषण करने में सक्षम है, सफल है। इसमें सिद्धांत-सूत्रों का निर्धारण मुख्यतया मानव चेतना की एकता पर आधृत होता है। चेतन और अचेतन दोनों मनोविज्ञान के वेत्ताओं ने मानव चेतना को आधार मानकर ही अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं जिसकी परिणति में सम्पूर्ण विधान आता है। निश्चय ही वह सार्वभौम संकल्पना है जो राष्ट्रीय, देशीय एवं भाषिक सीमाओं से सर्वथा मुक्त है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में प्रायः सर्वमान्य जीवन दर्शन है जो मानवतावाद पर आधारित है जिसका सीधा संबंध मानव चेतना से है। वास्तव में गंभीरता से यदि चिंतन-मनन किया जाय, तो वैश्विक स्तर पर साहित्यकार, द्रष्टा और स्रष्टा का समन्वित ज्ञान-ज्योति प्रज्ज्वलित करते रहे हैं। विश्व के साहित्य संवेदनात्मक धरातल पर काफी साम्य हैं। इसकी साहित्यिक रचनाएँ हमारी वैचारिक, भावनात्मक और अभिव्यंजक क्षमता को प्रेरित और समृद्ध करती है।

एक निपुण साहित्यकार सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व कर साहित्य सागर में उतर कर सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय के लिए सृजन करता है। वास्तव में सही अर्थों में जगतोपकार के लिए रचा गया साहित्य ही सर्वग्राही तथा सर्वोपकारी साहित्य है। विश्व साहित्य पटल पर दृष्टिपात किया जाय तो देखा जाता है कि विश्व साहित्य जगत वैश्विक मानव, मानवीय मूल्य सत्य, अहिंसा, न्याय-धर्म, सदाचार के प्रति पूर्ण तटस्थ रहकर साहित्य का अवगाहन कर रहा है। अतएव सम्पूर्ण मानव जाति की एक मूलभूत संस्कृति विचार समत्व पर आ मिलते हैं। सभी अलग-अलग राष्ट्रों की साहित्यिक समरूप अभिव्यक्तियाँ समग्र चेतना का समपुंज बनकर राष्ट्रीयता और वैश्विकता दोनों का एक साथ पूरक भाव से प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार वैश्विक साहित्य को भारतीय हिन्दी साहित्य पूर्णता प्रदान करता हुआ वैश्विक मानवता के लिए शाश्वत सृजनशीलता का पथ आलोकित करता है जो वसुधैव कुटुम्बकम् का पोषक है।

समीक्षा

# प्रेम, प्रतिरोध और लोक जीवन के यथार्थ की ग़ज़लें

डॉ. दिनेश अहिरवार
कक्ष क्र.–131, बिरला.'ब' हॉस्टल
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
उत्तर प्रदेश

'गर्म रोटी के ऊपर नमक तेल था' मशहूर ग़ज़लकार, गीतकार और समालोचक प्रो. वशिष्ठ अनूप जी का हाल ही में प्रकाशित नवीनतम ग़ज़ल संग्रह है। इसमें कुछ पुरानी ग़ज़लों के साथ अधिकांशतः नई ग़ज़लें संगृहीत हैं। वशिष्ठ अनूप अपने लेखन का एक लम्बा सफ़र तय कर चुके हैं। इन्होंने गीत, ग़ज़ल, कविता आलोचना केन्द्रित लगभग 56 पुस्तकों का सृजन किया है और अभी भी अनवरत रूप से सृजनरत हैं। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों को अधिकांश आलोचकों ने प्रेम और प्रतिरोध की ग़ज़लों के रूप में स्वीकार किया है, हालाँकि उन्होंने अन्य समसामयिक व महत्वपूर्ण विषयों को भी अपनी ग़ज़लों का केन्द्र बिन्दु बनाया है।

इस ग़ज़ल संग्रह के विमोचन समारोह में गीतकार ओम धीरज ने कहा कि "भारतीयता की परिधि में परंपरा और आधुनिकता के बोध को सम्यक् रूप से प्रकट करती ये ग़ज़लें आम जनमानस में घुल मिलकर संवाद करती हैं। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों के संदर्भ में प्रो. जितेन्द्र श्रीवास्तव कहते हैं कि "वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों की परिधि विस्तृत है। उनकी ग़ज़लों में उठाए गए विषयों से रूबरू होकर कोई भी भावक चमत्कृत हो सकता है। जीवन के बहुविध प्रसंग उनकी ग़ज़लों में आकर लोगों के जीवन का जरूरी हिस्सा बन जाते हैं। एक कवि अपने लिए इससे अधिक कुछ नहीं चाहता है। वे हमारे दौर के जरूरी शायर हैं, इस कथन से शायद ही कोई असहमत हो।" वशिष्ठ अनूप एक ऐसे ग़ज़लकार हैं जिन्होंने अपनी गजलों में विभिन्न विषयों को समाहित किया है जिनमें प्रेम, प्रतिरोध और लोक जीवन का सामाजिक यथार्थ से जुड़ी ग़ज़लों को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे –

प्रेम :– वशिष्ठ अनूप की प्रेम परक ग़ज़लों में जीवन के विविध रंगों की झलकियों को एक साथ देखा जा सकता है। इनकी ग़ज़लें महज भौतिक प्रेम तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि मनुष्य के अंतर्मन, जीवन की सुन्दरता, प्र ति सौन्दर्य और मनुष्य जीवन के प्रति प्रेम आदि विभिन्न दृश्य मौजूद हैं। किसी मनुष्य के जीवन संघर्ष और कठिनाइयों में अगर प्रेम से कोई हौसलाअफजाई करने वाला साथ हो तो जीवन का कठिन संघर्ष भी आसान लगता है। वे कहते हैं कि –

"मुझे पतझड़ भी फूलों का नगर मालूम होता है,
रहो तुम साथ तो जंगल भी घर मालूम होता है।
जमीं से आसमाँ तक हर नजारा भूल जाता हूँ,
तुम्हारी याद जब आती है दुनिया भूल जाता हूँ।"

जब हम प्रेम के संदर्भ में वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों का अध्ययन करेंगे तो हम उन्हें रहीम की परंपरा में पाएंगे जिसके सूत्र उनकी ग़ज़लों में अक्सर दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे रहीम कहते हैं कि –

"रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े गाँठ परि जाय।"

अर्थात् रहीम ने प्रेम के संबंध को एक नाजुक धागे के समान माना है। जिस प्रकार धागे के टूट जाने और फिर उसे दोबारा जोड़ने पर उसमें गाँठ पड़ जाती है, उसी मानिंद प्रेमसंबंधों में दरार आ जाने पर संबंधों में भी गांठ पड़ जाती है। इन्हीं तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए वशिष्ठ अनूप अपनी ग़ज़लों के मार्फत प्रेम और मानवीय संबंधों को बरकरार रखने का मानीखेज उद्दम रचते हैं –

"मोहब्बत गर करो तो प्यार पर अपने यकीं करना
ये धागा है बहुत नाजुक जो शक से टूट जाता है।"

प्रतिरोध :– साहित्य में प्रतिरोध की एक लम्बी परम्परा विद्यमान रही है और आज भी प्रतिरोध को विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है। बीसवीं सदी उत्तरार्द्ध में जन्मे अस्मितावादी विभिन्न साहित्यिक विमर्शों में प्रतिरोध काफी हद तक दृष्टव्य हुआ है। आधुनिक हिंदी ग़ज़ल परम्परा की शुरुआत दुष्यंत कुमार से मानी जाती है। उसके बाद त्रिलोचन शास्त्री, गोपाल दास 'नीरज', अदम गोंडवी, रामदरस मिश्र, कुँवर बेचैन आदि ग़ज़लकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जैसा कि अदम गोंडवी कहते हैं कि –

"घर में ठण्डे चूल्हे पर अगर खाली पतीली है,
बताओ कैसे लिख दूँ धूप फागुन की नशीली है।"

इस संग्रह की ग़ज़लों में वशिष्ठ अनूप अपने समय और समाज की गंभीर समस्याओं के प्रति संजीदगी से पेश आते हैं तथा प्रतिरोध का एक नया विज्ञान रचते हैं। एक ऐसा प्रतिरोध जिसमें आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल के प्रवर्तक दुष्यंत कुमार की परंपरा देखी जा सकती है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध वरिष्ठ आलोचक शिवकुमार मिश्र ने वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों को दुष्यंत कुमार की परंपरा से जोड़ते हुए 'मशालें फिर जलाने का समय है' ग़ज़ल संग्रह की भूमिका में लिखा है कि "वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें उर्दू हिन्दी की शायरी में प्रतिरोध की इसी परंपरा को आगे बढ़ाने वाली, उसे शक्ति और ऊर्जा प्रदान करने वाली ग़ज़लें हैं। वशिष्ठ अनूप जानते हैं कि समय का वह दौर जिसे आज हम जी रहे हैं, काल के चले आ रहे प्रवाह का, शायद सबसे कठिन दौर है। समय की विद्रूपताएँ जिस घटाटोप को लिए हमारे सामने हैं, वैसी वे कभी नहीं रहीं। उन्हें इस बात का भी एहसास है कि आदमी ने अब तक जो तमाम कुछ, शुभ और सुंदर अर्जित किया था, वह सब दाँव पर लगा हुआ है। आदमी जितना आत्मकेंद्रित, स्वार्थी, लंपट और लोभी आज है, पहले कभी नहीं था। पूँजीवादी व्यवस्था के जिस दौर में आज हम हैं, हम देख और अनुभव कर रहे हैं कि परंपरा से चले आ रहे सामाजिक, मानवीय, पारिवारिक संबंध, नाते रिश्ते इस व्यवस्था में महज व्यावसायिक संबंध बन कर रह गए हैं। बाजार और उसके साथ आई उपभोक्ता संस्कृति सब कुछ को खरीदी और बेची जाने वाली वस्तु में बदलने पर आमादा हैं।"

वहीं वशिष्ठ अनूप अपने रचनाकर्म को महज रचनाकर्म तक ही सीमित नहीं रखते हैं बल्कि वर्तमान समय की समस्याओं से हम सभी को वाकिफ़ कराते हैं और प्रतिरोधी तेवर के साथ अपनी मौजूदगी दर्ज करते हुए कहते हैं कि –

"साहित्य फ़क़त ढाल नहीं, आक्रमण भी है,
यह आक्रमण हम तुम पे लगातार करेंगे।"

समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों में वशिष्ठ अनूप भी दुष्यंत की प्रतिरोधी परंपरा का बखूबी निर्वहन करते हुए देखे जा सकते हैं। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में प्रतिरोध के वही तेवर देखने को मिलते हैं जिसकी नींव दुष्यंत ने रखी थी। समाज में जब जब अत्याचार, भ्रष्टाचार, सत्ता द्वारा आम जनता का दमन और शोषण, अनैतिकताएँ और अमानवीयता बढ़ी हैं, तब तब प्रतिरोध की आवाजें बुलंद हुई हैं और होती भी रहेंगी। अन्याय के बरक्स आवाज उठाना एक चेतनाशील और सजग रचनाकार की पहचान है, जो यह काम वशिष्ठ अनूप अपनी ग़ज़लों के मार्फत बखूबी ढंग से करते हैं। वे कहते हैं कि –

"अड़े हैं तो मंज़िल की ज़िद में अड़े हैं

बहुत छोड़ कर ही हम आगे बढ़े हैं।"

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में स्पष्टवादिता और निर्भीक स्वभाव का गुण हमेशा से ही विद्यमान रहा है। उनके यहाँ सत्ता का कोई खौफ नहीं क्योंकि उन्हें सच्चाई से प्रेम है, झूठ से दूर.दूर तक कोई वास्ता नहीं बल्कि उनके बरक्स मुस्तैदी के साथ टकराती है। जिसमें आतताई सत्ता की जड़ों को हिलाने का अदम्य सामर्थ्य भी देखा जा सकता है। वे लिखते हैं –

"क़लम को थपथपाती है हुकूमत
क़लम से थरथराती है हुकूमत।"

साहित्य और समाज में जड़ जमाये बैठे हुए तमाम गहराते अँधेरों, अंतर्विरोधों और अमानवीयताओं के बरक्स प्रतिरोध की परंपरा हमेशा से विद्यमान रही, उसी प्रतिरोध की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए वशिष्ठ अनूप की गजलें एक जलती हुई मशाल की मानिंद प्रकाश फैलाती हुई दृष्टव्य होती है। जैसा कि एक गजल के शेर में वे कहते भी हैं कि –

"मशालें फिर जलाने का समय है
अँधेरा और हमलावर हुआ है।"

लोक जीवन :– चूँकि वशिष्ठ अनूप का बचपन और उनकी प्रारंभिक शिक्षा ग्रामीण परिवेश में हुई है, इसलिए लोक जीवन का अनुभव और समझ होना स्वाभाविक है। वशिष्ठ अनूप को ग्रामीण जन.जीवन की समस्याएँ और ग्रामीण परिवेश का बखूबी ज्ञान है। वे लोक के कवि हैं, उनकी ग़ज़लों में भी लोक जीवन के अनेक रंग विद्यमान हैं। आज की चकाचौंध भरी दुनिया में लोग सड़कों, बाजारों और मॉल की ओर भाग रहे हैं, वहीं वशिष्ठ अनूप गाँव के मजदूर, आदिवासी एवं किसानों की हजारों साल पुरानी जमीनों को चंद रुपयों के मुआवजे का प्रलोभन देकर हड़प ली जा रही हैं। जिस पर चिंता व्यक्त करते हुए वशिष्ठ अनूप लिखते हैं –

"छीन ली सत्ता ने पुश्तैनी ज़मीन
फिर चला होरी मजूरी के लिए।"

भारत के गाँवों में आज भी लगभग सत्तर प्रतिशत लोग निवास करते हैं। यदि सच्चे भारत की तस्वीर देखनी है तो वह गाँवों में ही मिलेगी। क्योंकि वहाँ महानगरों जैसा छल.छद्म, झूठ, मक्कारी, भ्रष्टाचार आदि कुछ भी नहीं बल्कि प्रेम, भाईचारा, सहयोग, सद्भाव आज भी मौजूद हैं –

"गाँव.घर का नज़ारा तो अच्छा लगा,
सबको जी भर निहारा तो अच्छा लगा।
गर्म रोटी के ऊपर नमक तेल था,
माँ ने हँस कर दुलारा तो अच्छा लगा।"

''''''''''''''''''''''''''''''''

"मोटी रोटी, साग बथुए का व चटनी की महक
और ऊपर से वो अम्मा की खुशी अच्छी लगी।"

बाबूजी केन्द्रित ग़ज़ल में लोक जीवन का अद्भुत दृश्य देखने को मिलता है जिसमें बाबूजी के माध्यम से लोक जीवन के रंग को प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है –

"पैरों में चप्पलें पुरानी, हर मौसम धोती.कुर्ता,
दुबले तन पर मजबूती से, सह सहते थे बाबूजी।
फीस, किताबें, होली.खिचड़ी, तीज, रजाई, मेला, हाट,
बुनकर के ताने–बाने–सा, सब बुनते थे बाबूजी।"

सामाजिक यथार्थ :– वशिष्ठ अनूप अपनी ग़ज़लों के मार्फ़त एक ऐसी वर्णमाला या कहें कि एक ऐसे समाज के निर्माण की कोशिश में हैं जिसमें सभी लोग हँसी.खुशी से जीवन निर्वाह कर सकें। वे अपनी ग़ज़लों में समाज के विद्रूप चेहरे को सामने लाने की पूरी कोशिश करते हैं तथा समाज में व्याप्त तमाम शोषण तंत्रों की खबर लेते हैं। साथ ही मनुष्यता विरोधी षड्यंत्रों का पर्दाफाश भी करते हैं –

"जो हैं गमगीन उनको मैं हँसाने की जुगत में हूँ
नई एक वर्णमाला मैं बनाने की जुगत में हूँ
जो सबकी पीठ पर चढ़कर बहुत ऊँचे हुए जाते
मैं धोबीपाठ से उनको गिराने की जुगत में हूँ।"

बलराज पाण्डेय वशिष्ठ अनूप की सामाजिक यथार्थ से जुड़ी ग़ज़लों के सन्दर्भ में कहते हैं कि – "वशिष्ठ अनूप अपने समय के यथार्थ को पहचानने की भी क्षमता रखते हैं। आज सत्ता.व्यवस्था बहुसंख्यक जनता की मूल समस्याओं से हमारा ध्यान अलग करना चाहती है। वह ऐसे.ऐसे मुद्दों को उछाल देती है कि हम अपनी मूल समस्याएँ भूल जाते हैं। सत्ता.व्यवस्था की इस साजिश को वशिष्ठ अनूप खूब पहचानते हैं। इसलिए उनकी ग़ज़लों में गरीबों की आवाज मुखर हो पायी है।"

वशिष्ठ अनूप अपनी ग़ज़लों में वर्तमान दौर की स्थिति और राजनैतिक तंत्रों तथा बिकाऊ मीडिया पर अपनी चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं कि –

"अख़बार तो तोपों के मुक़ाबिल हुआ करते
ये कैसा डर है किसलिए सब सह रहे हैं आप
स्तम्भ लोकतंत्र का दम तोड़ रहा है
किस तरह ये सब देख के चुप रह रहे हैं आप।"

वशिष्ठ अनूप की सामाजिक यथार्थ से जुड़ी ग़ज़लों के सन्दर्भ में संग्रह की भूमिका में उद्धृत नचिकेता का वह वक्तव्य गौरतलब है, वे कहते हैं कि – "ये ग़ज़लें न केवल जीवन.यथार्थ और उसके अंतर्विरोधों को उजागर करती हैं, अपितु अपनी धारदार अभिव्यक्ति से उनकी विडंबनाओं और त्रासदियों, राजनीति के कुरूप चेहरों, आपदाओं के साथ प्र ति के सभी चित्रों की झांकी, बनते.बिगड़ते सामाजिक जीवन.मूल्यों की अत्यंत ही मार्मिक तस्वीर, प्रेम और सौन्दर्य के अनछुए प्रसंग, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श एवं पारिवारिकता से जुड़े अन्य प्रसंगों से भी स्वयं को समृ) करती हैं। आज के अति संश्लिष्ट सामाजिक यथार्थ की सम्पूर्ण जटिलता को अपने में समेटकर अत्यंत ही सहज बनाकर प्रस्तुत करना वशिष्ठ अनूप की अभिनव काव्य.कला का प्रमाण है।"

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों के बारे में पुस्तक के ब्लर्ब में लिखा गया है कि – "इनमें आदिवासी और वंचित समाज की समस्याओं के साथ ही साम्राज्यवादी लूट, पूँजीपतियों का वर्चस्ववाद, बाजार का आतंक, विज्ञापनों के षड्यंत्र, युद्ध का भय और मूल्यों के क्षरण की चिंताएँ भी हैं तथा उनके बरक्स सकारात्मक सोच और अनवरत प्रतिरोध भी व्यक्त हुआ है। इन सबके साथ ही इन गजलों में प्रेम और सौन्दर्य की विविध छवियाँ, बच्चों की मोहक शरारतें और किलकारियों का सौन्दर्य, जीवन.राग, नाद.अनुनाद, माता. पिता का ममत्व, पारिवारिक ताना.बाना तथा संस्कृति और संस्कारों की सुगंध भरी हुई है।"

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में प्रेम, प्रतिरोध, लोक.जीवन और समाज की विभिन्न समस्याएँ एक साथ मौजूद हैं। वशिष्ठ अनूप हमारे समाज में गहरी पैठ जमाये असामाजिक तत्वों की पड़ताल करते हैं और उन्हें उजागर करने का सार्थक प्रयास भी करते हैं। उन्होंने अपनी गजलों के मार्फत समाज की गंभीर समस्याओं से रू.ब.रू कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। महत्वपूर्ण इस माने में कि इन ग़ज़लों की विषय.वस्तु और भाषा सरल, सहज, बोधगम्य और सम्प्रेषणीय भी है।

समीक्षा

# गहन अनुभूतियों की कहानियों का संग्रह 'वांग छी'

डॉ. उपमा शर्मा
बी.1/248, यमुना विहार, दिल्ली
मोबाइल – 8826270597

कहानियाँ देश और समाज की वे वास्तविक तस्वीर होती हैं जिन्हें कथाकार संवेदनाओं की अथाह गहराइयों में डूब कर सृजित करता है। 'वांग छी' कहानी संग्रह से गुजरते हुए मन अनायास ही कथाकार के पात्रों की पीड़ा से जुड़ जाता है। ये कहानियाँ उर्वर संवेदनाओं की उपज हैं जो पाठक के हृदय पर बहुत समय तक स्थान बनाये रहती हैं।

इस कहानी संग्रह की पहली कहानी 'खिरनी' पढ़ते हुए पाठक के भीतर खिरनी.सी ही मिठास अनायास घुल जाती है। बचपन कितना निश्छल और मासूम होता है। कथाकार ने कहानी को बड़े सुंदर बिम्बों से सजाया है। खिरनी चम्बल और मालवा में पाया जाने वाला छोटा.सा एक दुर्लभ फल है बिल्कुल प्रेम के सदृश। प्रेम पगी नायिका खिरनी की मिठास में डूबी रहती है और नायक की आँखें बचपन से ही रेस में प्रथम आने के सपने बुनती हैं। प्रेम. स्मृतियों की पूँजी सँभाले कथा नायिका जिसे प्रेम में नीम भी मीठा लगता है लेकिन ज़िंदगी की भाग.दौड़ में अव्वल आने के लिए बहुत तेजी से दौड़ने वाला नायक जो अभी भी नायिका की कोमल भावनाओं के प्रति उतना ही संवेदनहीन है। इस कहानी में अधूरे प्रेम की कसक गलतान खिरनी की मिठास को नीम की कड़वाहट में तब्दील कर देती है और पाठक पर प्रेम में डूबी लड़की का जादू देर तक छाया रहता है।

सरहदों का बँटवारा किसी मनुष्य के जीवन को किस हद तक प्रभावित कर सकता है, इस बात का अहसास हमें संग्रह की शीर्षक कहानी 'वांग छी' में शिद्दत से होता है। दो सीमाओं में बँटे देश के व्यक्तियों का भी बँटवारा हो जाता है। इस लाइन के इस पार से उस पार जाने के नियम इतने सख्त हैं कि व्यक्ति चाह कर भी इस पार से उस पार अपनों से मिल नहीं सकता। वांग छी के घर दो देशों में बँट गये लेकिन जरूरत पर वे सीमा. रेखाओं की बाधा से न इधर के हो पाते हैं न उधर के। वे एक भी जगह सही समय पर उपस्थित न रह सके। कैसी विडम्बना है कि अफ़सरों के दिल भी पत्थर के हो जाते हैं, जहाँ संवेदनाओं की कोई सुनवाई नहीं।

टॉल्स्टॉय के शब्दों में कथानक सदा जीवन के कोलाहल से, वर्तमान समय के जीवंत अंतर्विरोध से उत्पन्न होता है। यह किसी सामाजिक अंतर्विरोध के प्रकटीकरण की चाबी है। मनीष वैद्य की कहानियाँ इस कसौटी पर पूरी तरह खरी उतरती हैं। ये कहानियाँ जीवन की सहज घटनाओं से स्वाभाविक और अकृत्रिम रूप से संवेदनाओं को उथल.पुथल कर पन्नों पर उतरी हैं। इसीलिए ये कहानियाँ हमें बेहद प्रामाणिक लगती हैं, जैसे वे अपने ही आसपास घट रही कोई बात कह रहे हों। वे किसी भी तरह से कहीं अविश्वसनीय नहीं होती हैं।

इन कहानियों के कथानक यथार्थ और बदलते समय की परिस्थितियों से उपजे हैं। वो तथाकथित विकास, तेजी से बदलते समय के गाँव, शहर, टेक्नोलॉजी और इससे पुराने व्यवसाय पर उत्पन्न हुआ संकट, दो देशों की सीमा.रेखा पर कड़वाहट से किसी व्यक्ति पर पड़ने वाले असर के माध्यम से बदलते समय की स्थितियों का लेखक चित्रण ही नहीं करते अपितु उन पर वैचारिक मत भी रखते हैं। इनकी कहानियों में राजनीति, समाज और जीवन की आलोचनात्मक व्याख्या है। ये कहानियाँ मनुष्य के दु:खों पर उँगली रखती हैं, जीवन को समझने का व्यापक दृष्टिकोण उत्पन्न करती हैं, इसलिए मनीष वैद्य लोकजन के बेहद लोकप्रिय कथाकार हैं। उन्होंने अपने इस नए संग्रह में शामिल कहानी चूहेदानी, एचएमटी 3511, कंधे पर घंटाघर, अगन मानुष, पहले जोड़, फिर घटाव फिर जोड़ और जुगलबंदी में विकास की अंधी दौड़ और टेक्नोलॉजी की वजह से पिछड़ते पुराने कारोबार के सतत् ह्रास से लोगों की आजीविका पर उपजे संकट से विपन्न लोगों की मन:स्थिति पर बखूबी कलम चलाई है।

कहानी के बारे में इस्पहानी भाषा के महान रचनाकार बोर्खेज ने लिखा है कि 'सृष्टि की रचना करने वाले ने सृष्टि के आरम्भ में ही कहानी लिख दी थी। हर दौर का लेखक उसे अपने.अपने ढंग से लिखता है।'

इसी बात को चरितार्थ करते हुए मनीष वैद्य संवेदनशील कथाकार हैं। रूस.यूक्रेन के युद्ध की पीड़ा से उपजी संवेदनाओं को कथावस्तु बनाकर उन जैसा कथाकार ही 'स्कायलैब' जैसी संवेदनशील प्रेम कहानी लिख सकता है। युद्ध से पहले किसी को यूक्रेन जैसे छोटे देश में बहुत ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी लेकिन रूस के उस युद्ध में तहस.नहस करने से देश.दुनिया के लोगों को यूक्रेन से एक विशेष लगाव हो गया। युद्ध में यूक्रेन के हताहत सैनिकों और मलबे के ढेर में बदलते शहरों को देख शायद ही कोई ऐसा संवेदनशील व्यक्ति होगा जिसकी आँखें नम न हुई हों।

मनीष वैद्य इन संवेदनाओं को रिजवाना के माध्यम से यूँ लिखते हैं – "कितनी सुंदर सलोनी है यह दुनिया लेकिन हमने आज इसे किस मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है। उसने कभी दुनिया के नक्शे में यूक्रेन नहीं देखा, लिहाजा उससे उसका जुड़ाव कभी किसी रूप में नहीं रहा लेकिन अभी जब से रूस ने उसे नेस्तनाबूद करना शुरु किया है, यूक्रेन अनदेखा.अनजाना होते हुए भी उसके दिल के एक हिस्से में धड़कने लगा है।"

रिजवाना अपनी पोती रिजा के मोबाइल पर आये मैसेज को देख अनायास ही चालीस साल पहले के उन हालातों में पहुँच जाती है जब रूस और अमेरिका में उपग्रह भेजने की होड़ सी मच गई थी। स्काईलैब उपग्रह का टनों वजनी मलबा गिरने वाला था। लोग डरे.सहमे थे कि इतना भारी उपग्रह जिस जगह गिरेगा तो वहाँ के लोग बचेंगे भी कि नहीं। ऐसे हालातों में करीम और रिजवाना भी अपनी मोहब्बत को लेकर चिंतित थे। दोनों उस आसमानी आफ़त के गुजरने के बाद एक होने का सोच रहे थे। आसमानी आफ़त एक निर्जन स्थान पर गिर गई। दुनिया बच गई। जब करीम को पता चलता है कि रिजवाना की शादी कहीं और हो गई, स्काईलैब की आफ़त से बच गया लेकिन उसके प्रेम की दुनिया लुट गई। वह पूछना चाहता है – "क्या दुनिया बची रही? पर किससे पूछे?"

कहानी अपने दूसरे उत्कर्ष को छूती है जब रिजवाना को अंशुल में करीम नज़र आता है। दुनिया चाँद पर पहुँच गई। बहुत कुछ बदला लेकिन दो प्रेम करने वालों के हालात आज भी वैसे ही हैं। क्या बदला? कुछ भी तो नहीं।

शिल्पगत दृष्टि से इन कहानियों की भाषा सरल और जीवंत है। शैली और शब्द चयन एक निरंतर सृजनशील साहित्यकार की शैली का आनंद देते हैं। यद्यपि कुछ कहानियों की विषय.वस्तु एक ही धरातल से ली गई है लेकिन कहीं भी दोहराव नहीं लगता। हर कहानी एक से बढ़कर एक लगती है। उनमें आम आदमी का डर, उसकी भावानुभूतियाँ बड़े ही मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। नि:संदेह यह एक उत्कृष्ट कहानी संग्रह है जो पाठकों के मन पर देर तक असर छोड़ेगा।

वांग छी (कहानी संग्रह), मनीष वैद्य, सेतु प्रकाशन, नोएडा

समीक्षा

# लठुआ चिंतन

अतुल्य खरे
महेश विहार, निकट–महामृत्युंजय द्वार,
इंदौर रोड, उज्जैन (म.प्र.)
मोबाइल – 9131948450

बात हिन्दी साहित्य में स्वस्थ व्यंग्य लेखन की हो तो रामनगीना मौर्य जी का नाम स्वतः ही जुबान पर आ जाता है। विभिन्न प्रकाशित पुस्तकों की अच्छी.ख़ासी संख्या के अलावा भी समय.समय पर उनकी रचनाएं भारतवर्ष के अमूमन हर प्रतिष्ठित पत्र.पत्रिका में प्रकाशित होती रहती हैं।

वे रचनाएं जो पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं, उनके अलावा भी मौर्य जी के पास रचनाओं का विशाल भंडार है। तात्पर्य यह कि साहित्य सृजन हेतु उनकी प्रतिबद्धता अद्वितीय है एवं सुधी पाठकों को और भी बहुमूल्य साहित्य का रसास्वादन करने के अवसर भविष्य में भी निरंतर मिलते रहेंगे। उनकी रचनाओं में भाषा, भाव सहज.सरल प्रवाह में रहते हैं एवं वे पाठक को सहज ही कथावस्तु से जोड़ कर मौके पर उपस्थित होने का एहसास करवा देते हैं। स्थान, पात्र एवं अवसर के मुताबिक ही शब्द प्रयुक्त होते हैं। साथ ही वे अपनी रचना में आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय भाषा के बहुप्रचलित शब्द, वाक्य, मुहावरे भी प्रयुक्त करते चलते हैं, और प्रसिद्ध गानों की भी एक दो पंक्तियाँ कहानी में रखना उनकी शैली की विशेषता कही जा सकती है।

उनकी कहानियाँ किसी विशिष्ट विषय पर सोच कर सृजित रचना न होकर वास्तव में उनके सूक्ष्म अवलोकन का ही परिणाम होती हैं। यही कारण है कि उनके विषय हमेशा आम लीक से हटकर जनसामान्य के बीच के होते हैं। आम.जन के दु:ख.दर्द उनकी परेशानियाँ, उनके जीवन के खट्टे.मीठे प्रसंग, हल्के.फुल्के अंदाज में और कुछ चुटीले अंदाज में पेश कर देते हैं।

प्रस्तुत कहानी संग्रह में राम नगीना मौर्य जी द्वारा रचित वे कहानियाँ संगृहीत की गयी हैं जो उनकी नजर में बस एक निठल्ले दिमाग की उपज ही हो सकती हैं। तभी तो उन्होंने पुस्तक का शीर्षक भी दिया है 'ठलुआ चिंतन', जिसमें उनकी शैली की विशिष्टता के अनुसार कहानियाँ किसी विशिष्ट विषय पर केन्द्रित नहीं हैं।

मौर्य जी अपनी ही शैली में लिखते हुए हर छोटी–छोटी बात पर भी अपनी नजर बनाए रखते हुए पाठक को अंत तक बांधे रखने में सदैव ही सक्षम हुए हैं और वही उनके इस नवीनतम संग्रह 'ठलुआ चिंतन' की इस पहली रचना 'हाई लेवल मीटिंग' में भी देखने को मिला। बड़े स्तर की शासकीय मीटिंग्स के अंदर की गतिविधियां पढ़कर लगा मानो कोई भुक्तभोगी अपनी व्यथा बयान कर रहा हो।

उनके कुछ चुनिंदा, प्रिय शब्द इस कहानी संग्रह में भी पढ़ने को मिल जाते हैं... जैसे आलोड़न.बिलोड़न, लंतरानियां, अललबछेड़ा। वहीं चन्द अपरिचित शब्द देखने में आए जो कि संभवतः क्षेत्रीय तो नहीं हैं। अतः क्लिष्ट जान पड़े बाकी तो मौर्य जी की विशिष्ट शैली में लिखी गई हल्की.फुल्की मनोरंजक रचना है।

कहानी 'ग्लोब' में ग्लोब के जरिए पुरानी और नई पीढ़ी की मानसिकता का परिवर्तन या अंतर दर्शाते हुए वे पाठक को बचपन में ले जाते हैं। आज की इंटरनेट सभ्यता में तेजी से आगे जाती हुई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी की बातों, समझाइशों और अनुभवों को अपने लिए अनुपयोगी तो समझती ही है, पुरानी पीढ़ी को यह एहसास भी बखूबी करवा देती है कि उनका समय निकल गया है, और अब समय के साथ चलते हुए उन्हें आधुनिक तौर.तरीके एवं तकनीक सीख लेना चाहिए।

कहानी में हास्य तो खैर नहीं ही था और जो व्यंग्य भी किया गया वह भी किस पर यह समझना दुष्कर है। क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग से इतर कुछ शब्द इस्तेमाल हुए हैं, जिनका अर्थ ढूंढना सामान्य पाठक हेतु थोड़ा मुश्किल हो सकता है।

इसी क्रम में आगे चलते हुए कहानी 'छुट्टी का सदुपयोग' अमूमन हर नौकरी पेशा के जीवन की हकीकत बयां करती है। बात चाहे घर की हो या कार्यालय की, जिस अंदाज में पेश की गई है, वह अत्यंत करीबी सी लगती है और सहज ही कथानक से संबद्ध करती है।

अपनी शैली को दोहराते हुए कुछ गीतों की पंक्तियां जोड़ कर उसके जरिए कथानक में रोचकता का समावेश कर जाना उन्हें विशिष्ट बनाता है।

जिन्होंने पूर्व में मौर्य जी की रचनाओं को पढ़ा है, वे जानते ही हैं कि उन्हें लेखन हेतु किसी विशिष्ट विषय की दरकार नहीं होती। वे किसी भी आम, रोजमर्रा के जीवन की उपयोगी.अनुपयोगी वस्तु, व्यक्ति अथवा विषय को या फिर किसी भी सामान्य.असामान्य बात, विषय अथवा घटना को अपने कथानक का विषय बना देते हैं, और तब उसका इतना रोचक बयान होता है कि पाठक सहज ही बस यही सोचता रह जाता है कि उस विषय पर क्या यह भी सोचा एवं लिखा जा सकता है? उसने तो कभी उस दृष्टिकोण से देखा अथवा सोचा ही नहीं। ऐसा ही विषय है सड़क पर एक बड़ा सा गड्ढा जो कि उनकी कहानी की मूल विषय वस्तु है। कहानी 'गड्ढा' जिसमें आप हर पल इंतजार करते हैं कि अब आगे वे क्या कहेंगे? कथानक का क्या नया मोड़ होगा? रोचकता व रचनात्मकता अत्यंत खूबसूरती से देखने को मिलती है।

उचित स्थान पर लोकोक्तियाँ, चौपाइयों तथा कहावतों का प्रयोग अक्सर हास्य उत्पन्न करता है। साथ ही अंग्रेजी शब्दों का एवं क्षेत्रीय भाषा के वाक्य, वह भी खास उसी अंदाज में जैसा कि उस क्षेत्र के व्यक्ति द्वारा उच्चारित किया जाता है, उनकी प्रस्तुति को विशेष बना देते हैं।

'मैं इधर जाऊँ या उधर जाऊँ' यूं तो एक लेखक द्वारा अपनी रचना हेतु उचित शीर्षक की तलाश के दौर में प्राप्त एवं विचारित अनेकानेक सुझाव हैं, किंतु कहीं.न.कहीं इसके द्वारा मौर्य जी ने नए ही क्यों, पुराने लेखकों को भी बहुत से उपयोगी संदेश दे डाले हैं। हास्य का हल्का.फुल्का पुट उनके कहने के साथ ही बन जाता है।

'फैशन के इस नाजुक दौर में', के द्वारा पुनः एक बार मौर्य जी ने अपनी शैली एवं विषय के चयन से प्रभावित किया है। रास्ते में गाड़ी खराब हो जाने से उत्पन्न स्थितियों का अच्छा चित्रण है। हालांकि मौर्य जी के लेखन में यदि हास्य अथवा व्यंग्य न हो, तो उसकी अनुपस्थिति खलती अवश्य है। 'उसकी तैयारियां' में सहज वार्तालाप में क्षेत्रीय भाषाई शैली पर पूरी पकड़ के साथ, वाक्यों के सामान्य प्रवाह को छेड़े बगैर, एवं बिना किसी अतिरिक्त बाह्य प्रयास के, हास्य के क्षण बनते रहे हैं, जहाँ बहुतेरे दृश्य अपने इर्द.गिर्द के ही प्रतीत होते हैं। सामान्य तौर पर ये किस्से अमूमन हर घर में सुनने को मिलते ही हैं एवं कह सकते हैं कि पत्नी को केन्द्र में रखकर जो 'दंपत्ति उवाच' प्रस्तुत किया गया है, वह यूं तो सार्वभौम विधि अनुसार एकपक्षीय ही है किन्तु बेहतरीन अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। मौर्य जी की ओर से स्वस्थ मनोरंजन की एक और मिसाल।

कहानी 'हस्बेमामूल' के जरिए उन्होंने यह बात सामने रखी कि रोजमर्रा के जीवन में बहुत सी बातें इतनी सामान्य होती हैं, जिनका हम आम तौर पर या तो नोटिस लेते ही नहीं और यदि नजर में आ भी जाएं तो उन पर विशेष गौर नहीं किया जाता। ठीक इसी प्रकार सभी कहीं.न.कहीं एवं कभी.न.कभी यात्रा तो करते ही हैं, पर यात्रा के दौरान लेखक जैसी सूक्ष्मता से चीजों को देखना सबके लिए कहाँ संभव होता है तो बस ऐसे ही एक सफर के दौरान इसे ही विषय बना कर रचना गढ़ दी है मौर्य जी ने। कहानी रेल.सफर के दौरान यात्रियों के व्यवहार, कुछ प्रकट, कुछ भासित एवं सफर के चलते, बनते

विभिन्न दृश्य.स्थितियां, जो यूं तो बेहद सामान्य सी ही प्रतीत होती हैं, किन्तु बस तब तक ही, जब तक कि उसे मौर्य जी की नजर से न देखें।

घर में वेस्टर्न कमोड की आवश्यकता एवं फिर जुगाड़ को लेकर रचित 'ऑफस्प्रिंग्स' भी अपनी केंद्रीय विषय.वस्तु अर्थात् कमोड को लेकर, उन्हें अवश्य चौंका सकती है जो मौर्य जी के विषय की खोज के तौर.तरीकों से वाकिफ नहीं है। क्योंकि उन्होंने फिर एक बार उस वस्तु को कथानक का केन्द्रीय विषय बना लिया है, जिसके विषय में कोई शायद ही सोचे। किंतु उन्हें एवं उनकी शैली को जानने वाले बखूबी जानते ही हैं कि वे विषय की तलाश नहीं करते। सामान्य जनजीवन की ही कोई बात अथवा वस्तु उनके कथानक बन जाते हैं। साथ ही यह भी कि कथानक की तलाश वे नहीं करते, वरन् सामान्य परिवेश में दैनंदिन के उपयोग में सहज उपलब्ध कोई विषय अथवा वस्तु या फिर घटना या पात्र पर संपूर्ण रचना सृजित हो जाती है।

इसी संग्रह की ठलुआई चिंतन से भरपूर रचनाएं हैं 'गुरुमंत्र' और 'मच्छर महाशय', जिन्हें पढ़कर निश्चय ही सम्पूर्ण ठलुआई विचारयुक्त इन रचनाओं पर लेखक को बधाई देना तो बनता ही है।

'गुरुमंत्र' तो चलिए फिर भी किसी कामचोर शासकीय कर्मचारी की कार्य शैली पर कटाक्ष है, किंतु 'मच्छर महाशय' तो निरे कल्पनातीत विषय पर एक विलक्षण सी सोच का अच्छा प्रस्तुतिकरण है।

हास्य व्यंग्य भले ही ठहाके लगाने हेतु न हो, किंतु मौर्य जी का विषय वर्णन ही आपको उनकी रचना संग बांध के रखता है। असबद्ध से विषय कैसे जुड़ जाते हैं और उनमें भी कैसे वे वह देख पाते हैं जो एक आम पाठक को तो कभी नजर आता ही नहीं।

'दिमागी कसरत' हमें इस मुद्दे पर ले जाती लगती है कि यदा.कदा हमें कुछेक पुरानी यादों को ताजा करते ख्यालों की भूली.बिसरी गलियों में विचरण करने का अवसर लेते हुए, दिमाग को कुछ नई खुराक दे देनी चाहिए।

अब जब सम्पूर्ण पुस्तक ही ठलुआ चिंतन है तो बहुत अधिक तार्किकता अथवा विषय.वस्तु में कुछ अद्भुत को तलाशना निश्चय ही दुष्कर है। किंतु जो प्रस्तुत किया गया है, वह अपने आप में विशिष्ट एवं अद्भुत है जो कि बिना किसी विषय विशेष के आपको विभिन्न अद्भुत रहस्यों से परिचित करवा देते हैं, जो कि आम सोच से परे होते हैं।

कहानी 'नई रैक' पढ़ते हुए यह प्रतीत होता है मानो एक लेखक की आपबीती कागज पर उतार दी गई है। अमूमन हर लेखक अपने घर वालों से कुछ ऐसा ही रिस्पॉन्स पाता है। फिर भी उस सब के बीच, उसे अपनी सृजनात्मकता को जीवित रखते हुए सृजन कर्म को अंजाम देना वाकई एक कठिन कार्य तो है ही। अपनी पुस्तक पत्रिकाओं को समेटने, सहेजने हेतु एक अदद रैक का इंतजाम करने हेतु कितनी मुश्किलात दर पेश आती है, यह पढ़ना मानो अपनी आपबीती को लिपिब) होते देखने जैसा था। अंततः पुस्तक की शीर्षक कहानी 'ठलुआ चिंतन' यथा नाम तथा दर्शन को चरितार्थ करते हुए कह सकते हैं कि पूर्णतः खाली समय का सदुपयोग, वो भी नितांत ठलुए अंदाज में कैसे हो, यह दर्शाती है। विभिन्न विषयों पर आम.जन के वार्तालाप को संयोजित व अपने हितानुसार समायोजित करती चलती है।

पुस्तक के अंत में मौर्य जी की विभिन्न तियों पर चुनिंदा वरिष्ठ समीक्षकों की टिप्पणियां भी दी गई हैं, जो निश्चय ही पाठकों के समक्ष उनकी अन्य पुस्तकों के विषय में संपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत कर देते हैं तथा उनके नए पाठकों को उनके द्वारा रचित अन्य पुस्तकों के इच्छानुसार चयन में मददगार साबित होते हैं।

अपनी विशिष्ट शैली में मौर्य जी ने एक बेहतरीन कृति प्रस्तुत की है जो कि निश्चय ही पठनीय है।

ठलुआ चिंतन, राम नगीना मौर्य, कथा संग्रह (व्यंग्य), रश्मि प्रकाशन, लखनऊ

समीक्षा

## लघुकथा में आलोचना की त्रिवेणी बहती है...

प्रो. रूप देवगुण
डॉ. गाँधी वाली गली, गोविन्द नगर, सिरसा, हरियाणा
मोबाइल – 9812236096

बहुमुखी प्रतिभा के धनी सूर्यकान्त नागर ने अब तक दस कहानी.संग्रह, दो उपन्यास, दो व्यंग्य.संग्रह, तीन निबन्ध.संग्रह, दो आत्मकथात्मक संस्मरण एवं एक लघुकथा.संग्रह देकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

लघुकथा लिखने में सिद्धहस्त तथा विधा के समर्पित हस्ताक्षर सूर्यकान्त नागर ने आलोचक के रूप में भी अप्रतिम कार्य किया है। 'लघुकथा वृत्तान्त' उनका आलोचना से संबंधित संग्रह है जिसमें उनके ग्यारह आलेख, सात लघुकथाकारों के परिचयात्मक निबंध तथा तीन समीक्षाएं शामिल हैं।

'खण्ड एक' में दिए गए आलेखों में नागर जी ने लघुकथा की अब तक की यात्रा का वर्णन किया है। साथ ही उन त्रुटियों के बारे में भी लिखा है जो इस विधा.यात्रा में बाधा के रूप में आई हैं। लेखक ने अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, विडंबनाओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।

नागर जी ने कुछ महान लेखकों, विचारकों के विचारों का भी अवलम्ब लिया है तथा उनके कतिपय महत्वपूर्ण लघुकथाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उन लेखकों का भी वर्णन किया है जिन्होंने साम्प्रदायिक सौहार्द को लेकर लेखनी चलाई है। उनका यह भी कहना है कि लघुकथा का आलोचना.पक्ष संतोषजनक नहीं है। अभी काफी कुछ किया जाना शेष है।

लेखक ने समीक्षक के वांछित गुणों का भी जिक्र किया है। वे मानते हैं कि अब लघुकथा यथार्थ से आदर्श और अध्यात्म की ओर मुड़ी हैं। नागर जी ने लघुकथा के शिल्प व शैली पर भी विस्तृत टिप्पणियाँ दी हैं। उन्होंने नारी उत्पीड़न से संबंधित लघुकथाओं का वर्णन 'लघुकथा में नारी विमर्श' नामक आलेख में तथा पुरुषवादी सोच का वर्णन 'लघुकथाओं में पुरुषवादी सोच' आलेख में किया है। 'खंड एक' के आलेख में तथा पुरुषवादी सोच का वर्णन 'लघुकथाओं में पुरुषवादी सोच' आलेख में किया है। 'खंड एक' के अंतिम आलेख में प्रेमचंद की कहानियों के जिक्र के साथ उनकी कुछ लघुकथाएँ भी दी हैं। सूर्यकान्त नागर ने सरल, सजीव भाषा, सूक्तियाँ.उक्तियाँ तथा कुछ प्रतिष्ठित लघुकथाकारों के अवदान को इन आलेखों में देने की कोशिश की है जो लघुकथाकारों और पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक सिद्ध होंगे।

खंड दो में कुछ ऐसे समर्पित लघुकथाकारों के व्यक्तित्व कृतित्व पर प्रकाश डाला है जिन्होंने अपनी लघुकथाओं, सम्पादन कार्यों तथा आलोचनाओं द्वारा लघुकथा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, इनके नाम हैं – श्यामसुन्दर व्यास, बलराम, मधुदीप, विक्रम सोनी, रमेश बत्रा, सतीश राठी व रूप देवगुण। 'खंड तीन' में डॉ. अशोक भाटिया के संग्रह 'अंधेरे में आँख', चैतन्य त्रिवेदी की 'कथा की अफवाह' तथा बलराम अग्रवाल की 'पीले पंखों वाली तितलियाँ' की समीक्षा दी गई है।

निस्संदेह 'लघुकथा वृत्तान्त' संग्रह लघुकथा के आलोचना क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होगा। इसमें उनके द्वारा लघुकथा के बारे में की गई निष्पक्ष टिप्पणियाँ उन्हें विधा के गंभीर आलोचक के रूप में प्रस्तुत करती है।

लघुकथा वृत्तांत, आद्विक पब्लिकेशन, दिल्ली–92

समीक्षा

# चिंतन के नये आयाम: जयकारी

अश्विनी कुमार दुबे
बी/आर, महालक्ष्मी नगर, इंदौर
मोबाइल – 9425167003

इधर आधुनिक हिंदी लेखन में स्त्री विमर्श पर बहुत लिखा जा रहा है। अबला तेरी यही कहानी... वाली बात अब साहित्य में नहीं रही। इन दिनों नारी के संघर्ष, संकल्प और सफलता की बातें कही जाती हैं। जीवन के हर क्षेत्र में नारी ने अभूतपूर्व सफलता पाई है। इधर चूल्हे और चौके में रहने वाली नारी के किस्से नहीं लिखे जाते। अब राजनीति, शिक्षा, नौकरशाही, व्यवसाय, खेल और सेना तक में नारी के शौर्य की बातें लिखी और पढ़ी जाती हैं। क्या सचमुच भारतीय समाज में नारी ने पुरुष की बराबरी का एक सम्मानजनक दर्जा प्राप्त कर लिया है? यह प्रश्न आज भी हवा में तैरता रहता है, कहीं बहुत बड़ा और कहीं छोटा।

पूर्व प्रशासनिक अधिकारी और कुशल साहित्यकार सुखदेव प्रसाद दुबे अपने नए उपन्यास: 'जयकारी' में इन प्रश्नों से जूझते हुए दिखाई देते हैं। इसके पूर्व श्री दुबे के तीन काव्य संग्रह और दो उपन्यास प्रकाशित हैं। 'स्त्री विमर्श' को केन्द्र में रखकर लिखा गया उनका यह तीसरा उपन्यास चिंतन के नये आयाम प्रस्तुत करता है।

भारतीय संस्कृति में स्त्री को देवी का दर्जा दिया गया है। वह आद्य शक्ति है। वह जगत जननी है। उसके मातृ रूप की यहाँ बहुत महिमा है। एक रूप और है उसका वीरांगना का, शक्ति स्वरूपा का। वह दुष्टों का संहार करती है और यहाँ तक कि काली के रूप में आततायियों के रक्तबीजों को भी समूल नष्ट कर देती है। हमारा इतिहास भी हमें कई वीरांगनाओं से परिचित कराता है। ऐसी समृद्ध संस्कृति और गौरवशाली इतिहास प्रसंगों के बावजूद भारतीय समाज में आज भी स्त्री को अपना अधिकार और सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया है जो उसे अभीष्ट है।

उपन्यास की शुरुआत ही... फिर लड़की शीर्षक से होती है –

"वो भी काली कलूटी, हड्डियों का ढांचा!

हे माँ! क्या मेरे भाग्य में, एक भी लड़का नहीं लिखा। अपनी छठवीं संतान भी लड़की होने से लक्ष्मी को गहरा आघात लगा और वह दु:खी होकर चीख पड़ी। वह लगभग बेहोश हो गयी थी।

लक्ष्मी के पति नारायण बाबू निराशा के अंधकार में डूब गए थे। उन्होंने उस लड़की का मुँह तक देखना पसंद नहीं किया था। अपनी प्रिय पत्नी को अकेला छोड़कर वे बड़बड़ाते हुए कमरे से बाहर आ गए। ओह! ये लड़कियाँ यह जानते हुए भी कि यहाँ उनका स्वागत नहीं होता, फिर भी चली आती हैं, रोने और मरने के लिए!

क्या करूं! गला दबा दूँ! जहर दे दूँ या कहीं नदी .नाले में फेंक आऊँ!

लक्ष्मी, तू भी कैसी अभागी स्त्री है। एक भी लड़का नहीं जन पाई। अरे, यदि यही होना था, तो तू गर्भ में ही क्यों रखे रही इसे?

नारायण बाबू, अपनी प्रिय पत्नी को दोषी मानने लगे थे – अरे लक्ष्मी! एक तो विष्णु .वंशज बनाया होता।"

यह समस्या भारतीय समाज में शुरु से देखने को मिलती है – वंश कैसे चलेगा? वंश बढ़ाने के लिए लड़का चाहिए। किसी भी प्रकार! पुराने समय में नियोग की प्रथा थी। हमारे प्रसिद्ध ग्रंथों में इसके उदाहरण मिलते हैं। यह प्रथा आज भी छुप .छुपाकर लोग अपना लेते हैं। इसका एक उदाहरण उपन्यास में है। अब आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भ्रूण परीक्षण की प्रणाली विकसित कर दी, जिसके कारण भ्रूण हत्या के बेहिसाब मामले आने लगे। मजबूरन सरकार को उस पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। लड़का या लड़की होना एक सांयोगिक मामला है। X-X सेल मिलेंगे तो लड़की। X-Y सेल मिलें तो लड़का। यह सिर्फ संयोग है, जिसे हम ईश्वर का विधान मानते हैं। मनुष्य का इस पर कोई नियंत्रण नहीं।

उपन्यासकार अपनी कथा नायिका जो कि एक काली कन्या है, इसके माध्यम से संस्कृति, धर्म और समाज में प्रचलित मान्यताओं की व्याख्या करता है। हमारी संस्कृति और धर्म में स्त्री प्रतिष्ठित है। वह देवी है। उसके नौ अलग .अलग रूप बताए गए हैं। उनमें एक रूप शक्ति स्वरूपा है। वह पाप नाशनी है। वह अन्याय और अत्याचार के रक्तबीजों को समाप्त करने वाली है। इतनी विशाल महिमा है, हमारे धर्म में स्त्री की। परंतु समाज में हमें कुछ और देखने को मिलता है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री भोग्या है। परिवार में वह दोयम दर्जे की है। बचपन में वह माँ .बाप के संरक्षण में, युवा काल में उसका स्वामी उसका पति और वृद्धावस्था में वह पुत्रों की देखभाल में जीवन गुजारती है – यही है भारतीय समाज में स्त्री की छवि। लेखक अपने उपन्यास की नायिका के साथ इन रूढ़िवादी मान्यताओं के खिलाफ संघर्ष का चित्रण करता है।

सबसे पहले तो शिक्षा। शिक्षा ही नारी को सबल बनाती है। कथा नायिका कारी मन लगाकर पढ़ती है। उसे शिक्षित होकर सबल होना है। वह सभी परीक्षाएं अच्छे नंबरों में पास होती चली जाती है और एक दिन उसी कॉलेज में जिसमें उसने शिक्षा पाई थी, प्राध्यापक होकर आती है। वह एन .सी. सी. में भी है, एक सबल सैनिक की तरह –

एक दिन परेड से लौटकर, एन.सी.सी. की ड्रेस में कमीशंड ऑफिसर का वैज लगाए – कारी अपने वेतन के रुपए तीन सौ लेकर अपनी माँ के पास पहुँची और उसके हाथों में रखकर बोली – "ले, इसे अपने लड़के की कमाई समझ कर रख ले। अब मैं किसी भी लड़के के समान, कमाने योग्य बन गई – लड़का न होने का दु:ख अब भुला दे।" और उसने अपनी माँ को अटेंशन होकर एक जोरदार सैल्यूट मारा।

लक्ष्मी, अपने कमरे में अकेली अपनी खाट पर बैठी और खाट की तरह ही टूटी, खाँसी से लड़ रही थी। कारी द्वारा किए गए सम्मान को देखकर आश्चर्यमिश्रित खुशी से भर उठी। उसकी खाँसी बंद हो गई। कारी ने उसे गिलास में भरकर पानी दिया और खुद पिलाते हुए उसी के पास बैठ गई और पूछने लगी –

"माँ! क्या मैं एक बेटे से कम लगती हूँ?"

यहाँ से कथा नायिका का सार्वजनिक जीवन सामने आता है। हालांकि बचपन से और किशोरावस्था में वह समाज में व्याप्त स्त्री और पुरुष के भेदभाव को भलीभांति देखती आई थी। इधर अब वह सीधे .सीधे इस विसंगति का सामना करती है। कॉलेज की अपनी राजनीति है। उद्दंड लड़कों के संगठन हैं। मैनेजमेंट में पुरुषों का वर्चस्व है। स्त्री कितनी भी योग्य हो परंतु उसे देखने का पुरुषों का पैमाना अलग है। उनकी नजरों में वह भोग्या है। कमजोर है। दोयम दर्जे की है।

"क्या लड़की होना, कुछ भी होना नहीं होता। इतना कमजोर डोर

और वस्तु होना होता है कि कोई भी, स्वयं समीप के लोग, संबंधी रिश्तेदार तक, दोस्त, मित्र, परिचित, पुरुष कोई भी, उसका जैसे चाहे, इस्तेमाल कर सकते हैं। अपनी हवस शांत करने के लिए वे उसका कभी भी उपयोग कर सकते हैं। पुरुष मात्र यह कैसे समझ बैठा है कि कोई भी लड़की या स्त्री, कभी भी किसी भी बात का न विवाद बना सकती है, न प्रतिवाद कर सकती है। प्रतिशोध लेने की बात तो उसके दिमाग में आ ही नहीं सकती। क्या स्त्री ने अपनी आजादी हमेशा के लिए खो दी है। क्या हर स्त्री, सदा.सदा के लिए पुरुष की गुलाम बन चुकी है। कारी के भीतर उसका सोया आत्मसम्मान जाग उठा था।"

कारी को लगता है, समाज में व्याप्त विसंगतियों का मूल कारण शिक्षा है। परंतु वह शिक्षा जगत से जुड़ी है। कॉलेज में प्राध्यापक है। यहाँ वह तीव्रता से यह महसूस करती है कि विश्वविद्यालयों में हम जो पढ़ा रहे हैं, वह शिक्षा नहीं है। वह एक तरह का प्रशिक्षण है, जिससे हम प्रशिक्षित कामगारों की भीड़ बढ़ाते जा रहे हैं। इस तथाकथित शिक्षा से आदमी के व्यक्तित्व का कोई संबंध नहीं है। यह शिक्षा तो एक तरह की ट्रेनिंग मात्र है, इससे आदमी का चरित्र कैसे बदलेंगे? शिक्षा यदि चरित्र का निर्माण नहीं करती तो शिक्षा तंत्र को बदलना होगा और वह सार्थक शिक्षा लागू करनी होगी, जिससे सचमुच चरित्र का निर्माण संभव है। एक जगह कारी अपने कॉलेज की प्राचार्या से कहती है –

"मैडम! हमारी उच्च शिक्षा की संस्थाएं, इतनी गैर–गंभीर और गरिमा विमुख क्यों हो रही है? उच्च ज्ञान के स्थान में कुछ भी तो उच्च नहीं दिखता। हम मास्टर्स की डिग्रियां बाँट रहे हैं परंतु मास्टर कोई नहीं बन रहा! हमारा महाविद्यालय किस दृष्टि से महा विद्या का आलय है। हालात यह है कि विद्यालय पशु आलय से लगने लगे हैं। मनुष्य बनाने का कोर्स पढ़ाते.पढ़ाते शिक्षा कहीं पैसा और फिर पशु न बनाने लगे!

मैडम, हमें अपने महाविद्यालय को महान ज्ञान का आलय बनाने के लिए कुछ विशेष करना चाहिए। जल नीचे आकर, कीचड़ न बन जाए। उसे ऊपर उठाने के लिए कोई उच्च बल तो लगाना ही होगा।"

कारी के प्रयासों से यह बात कॉलेज की प्राचार्या से कुलपति और कुलपति से राज्यपाल तक पहुंचती है। राज्यपाल प्रदेश के सभी कुलपतियों को बुलाकर इस विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित करते हैं। हमारे पास शिक्षा का एक पश्चिमी मॉडल है, जिसे हमने सहर्ष अपना लिया है। अधिकांश कुलपति विकास का हवाला देकर प्रचलित मॉडल का समर्थन करते हैं। बैठक में कुछ लोग कारी के विचारों का समर्थन भी करते हैं परंतु शिक्षा का एक व्यावहारिक प्रारूप किसी के पास नहीं है। काफी विचारोत्तेजक बहस के पश्चात् कारी को शिक्षा का नया प्रारूप बनाने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। वह अपना प्रारूप बनाकर समय सीमा में प्रस्तुत भी करती है परंतु व्यवस्था में 'यथास्थिति वाद' के समर्थक ज्यादा हैं। राजनीतिक अड़चनें हैं। सत्ताधीशों के अपने निजी स्वार्थ हैं। इस वजह से कारी का वह प्रोजेक्ट उपेक्षित रह जाता है। – इस प्रसंग को लेखक ने बहुत विस्तार से लिखा है, जैसे वह शिक्षा के बदलाव को लेकर अपने इस उपन्यास के द्वारा एक देशव्यापी बहस का आह्वान चाहता है।

उपन्यास का मुख्य स्वर 'स्त्री विमर्श' का है। अर्थात् समाज में नारी की स्थिति को लेकर चिंता और उपन्यास के मुख्य पात्र 'कारी' के माध्यम से बदलाव की दिशा की ओर संकेत। कारी देशभर में भ्रमण करती है। साधु.संतों का रंग.ढंग देखती है। राजनीति के गलियारों में जाती है। नौकरशाहों का व्यवहार देखती है। इस प्रकार वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री की अस्मिता को अपने अनुभवों से समझने की कोशिश करती है। सब जगह उसे नारी के प्रति लोगों का दृष्टिकोण दोषपूर्ण दिखाई देता है। बहुत कम लोग ही समाज में नारी के मान.सम्मान के प्रति सजग और उसकी प्रतिभा के पक्षधर मिलते हैं। धीरे–धीरे कारी को लगता है कि नारी का ममतामयी, करुणामयी और प्रेममयी रूप अच्छा है परंतु उसका शक्ति स्वरूपा, अन्यायी एवं दुराचारियों के रक्तबीजों का संहार करने वाला काली रूप आज के संदर्भ में ज्यादा प्रासंगिक है। इस प्रकार यह उपन्यास कारी नामक एक सुकोमल कन्या, जो ममतामयी, करुणामयी एवं प्रेममयी है, काली रूप में क्रमशः परिवर्तित होते जाने की यात्रा कथा है।

चारों ओर दुराचारी शक्तियाँ सिर उठा रही हैं। उनका वर्चस्व है। समय की मांग है, नारी को अब घर की चारदीवारी के बाहर निकलना है। उसे सार्वजनिक क्षेत्रों में जाकर पुरुषों के सामने अपनी कार्य दक्षता दिखानी है। ऐसे में उसे शक्ति स्वरूपा होना ही होगा। उसके पुराने रूप से उसकी रक्षा नहीं हो सकती। वह रूप भी उसका शुभ है परंतु उसे अपने अंतर्मन में संजोये हुए कारी के कल्याणकारी रूप में आना होगा। उपन्यास के अंत में 'कारी' यही उद्घोष करते हुए दिखाई देती है –

"शक्ति स्वरूपा स्त्री किसी के अधीन नहीं, किसी की अर्धांगिनी नहीं। पूर्ण स्वतंत्र, पूर्णांगी जगत जननी है। पौरुष की पालक, पोषक, परमेश्वरी है। शक्तिरूप में ही स्त्री जय–विजय प्राप्त कर सकती है।

पुरुषों ने पौरुष अहंकारवश स्त्री को, अपनी पसली की हड्डी और अपनी हवस की हाड़ी बनाकर, उसकी शक्ति को सोख डाला है। उसकी स्वतंत्रता को, अपने पास गिरवी रख रखा है। सामरस्य के आदर्श को भ्रष्ट कर डाला है।

स्त्रीतत्व के शोषण.दमन की सीमा आ गई है। स्त्री को अब क्रोध आने लगा है, उसकी भृकुटियां टेढ़ी होने लगी हैं, उसका माथा तपने खुलने लगा है। स्त्री के ललाट से शक्ति की देवी काली को निकलने से, उसे शक्ति बनने से, अब कोई नहीं रोक सकता – स्वयं स्त्री भी नहीं। स्त्री को अपना मरण.मिटन बचाना है तो उसे अपनी स्वतंत्रता के रण में कूदना ही पड़ेगा और इस रण में अपनी विजय के लिए काली को अपनी अशुभ.संहारक भूमिका निभानी ही होगी।"

सुखदेव प्रसाद दुबे का यह तीसरा उपन्यास 'जयकारी' शक्ति स्वरूपा नारी का अभिनंदन है। वे इस उपन्यास में अपना उद्देश्य स्थापित करने में सफल हैं। इस उपन्यास में वे नारी के कोमलकांत, करुणामय रूप से लेकर अत्याचार निवारणी, दुष्टजन संघारणी काली रूप तक की कथा सफलतापूर्वक कह पाए हैं। उनकी भाषा सहज, सरल एवं प्रभावशाली है। शैली में वर्णनात्मकता के साथ सहज प्रवाह है। अपनी पठनीयता के कारण 321 पेज का यह वृहद उपन्यास पाठकों द्वारा सहज पढ़ा जा सकता है। कहीं.कहीं विचारों का विश्लेषण, दार्शनिक आख्यान और स्थितियों का विवेचन जरूरत से ज्यादा विस्तार पाता गया है, इससे बचा जा सकता था। उपन्यास रोचक है। आज के सन्दर्भ में जरूरी हस्तक्षेप है। आशा है, हिंदी जगत में इसका भरपूर स्वागत होगा।

जयकारी (उपन्यास), सुखदेव प्रसाद दुबे, इंदिरा पब्लिशिंग हाउस, 5/21, अरेरा कॉलोनी, भोपाल – 462016

समीक्षा

# 'इति दुविधा कथा' : भारतीय मध्यवर्ग के संघर्ष व अंतर्द्वन्द्व की बहुरंगी कथाएँ

डॉ. नवीन सिंह

कहानी समय के वैविध्यमय कथाबिंदुओं का अर्थपूर्ण संयोग है। यह अर्थपूर्ण संयोग तभी सम्भव है जब मनुष्य के जीवन की सूक्ष्मताओं को उसकी गहराई में उतरकर ढूंढा जाता है। भारतीय समाज के वर्तमान को रचने में मध्यवर्ग का बहुत बड़ा हाथ है। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की तुलना में मध्यवर्ग का दृष्टिकोण सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं को निश्चित करता है। उच्च वर्ग सत्ता और समृद्धि के बल पर किसी भी मूल्य एवं मान्यता का निषेध करता है। निम्न वर्ग भी मूल्यों के निर्माण की सीमा से परे है। क्योंकि उसके लिए जिंदा रहना ही सबसे बड़ा सवाल है। आज भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस तिक गतिविधियों में मध्यवर्गीय संस्कृति का स्पंदन भरा पड़ा है, जिसे 'इति दुविधा कथा' में संकलित कहानियों में सघनता के साथ महसूस किया जा सकता है।

'इति दुविधा कथा' कहानी संग्रह कथाकार प्रीतीश आचार्य की मूल रूप से ओड़िया भाषा में लिखित प्रतिनिधि कहानियों का हिंदी अनुवाद है, जिसमें ओड़िया जीवन और समाज अपनी पूरी जीवंतता के साथ उपस्थित है। फिर भी उनकी कहानियों में जिस मध्यवर्ग और लघु समाज से हमारा परिचय होता है वह भाषा की परिधि को लांघते हुए व्यापक भारतीय मध्यवर्ग की संवेदनाओं को दर्शाता है। चूंकि मध्य वर्ग के मन में आधुनिक मनुष्य और आधुनिक समाज की छवियों के प्रति सहज आकर्षण है। लेकिन उसके लिए अतीत से मुक्त हो पाना भी आसान नहीं था। वह अतीत के प्रशंसा लायक तत्वों को अपनाकर आलोचक तत्वों का त्याग कर सकता था। लेकिन मध्यवर्ग का एक औसत व्यक्ति इस बौद्धिक बारीकी को न पकड़ सका। वह आधुनिकता को अस्पष्ट रूप में ही ग्रहण कर सका है। फलतः वह एक खंडित मानसिकता का शिकार होता गया। सार्वजनिक जीवन में भले ही वह आधुनिकता के तत्वों को स्वीकार करता रहा पर निजी जीवन में इस अनुमोदन के खिलाफ था। इसीलिए लघु समाज के चरित्रों में जो अंतर्विरोध या खंडित मानसिकता से उत्पन्न दुविधा की स्थिति है, वह पात्रों के प्रतिनिधि प्रवृत्ति बनकर कहानी–संग्रह के शीर्षक का स्थान ले पायी है।

बाल मन बड़ा ही भावुक और संवेदनशील होता है। इस अवस्था में उसकी अपनी काल्पनिक दुनिया होती है जो यथार्थ से कहीं दूर होती है। उसका काल्पनिक संसार बड़ा ही जादुई, रोमांचक और इंद्रधनुषी होता है। बाल मन सदैव इस जादुई आकर्षण के पीछे मतवाला रहता है। बाल मन कोरी स्लेट की तरह होता है। उन्हें जैसी शिक्षा दी जाती है, जैसे संस्कार दिए जाते हैं, जैसा परिवेश मिलता है, वे उसी रूप में ढल जाते हैं। बालमन को समझना और उसकी कल्पनाओं के साथ उड़ान भर पाना एक वयस्क के लिए संभव नहीं है। यह तभी संभव है जब वह अपने भीतर एक बाल मन संजोए हुए है। कहानीकार की संवेदनशीलता का वितान इतना बड़ा है कि वह प्रौढ़ता से बाल्यावस्था की आवाजाही निर्बाध रूप से करता रहता है।

मोटर, चिट्ठी पर्व, टिफिन का डिब्बा और ठंडी बरफ जैसी कहानियां बाल मन की सूक्ष्म व कोमल परतों को बहुत ही रोचक तरीके से खोलती हुई चित्रित करती है। मोटर कहानी में गबरू का ये कथन बच्चों की कोमल भावनाओं और निर्मल सोच और बाल मनोविज्ञान का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करती है – 'गबरू ने अब एकांत देखकर, फिर एक बार ड्राइवर की गद्देदार सीट पर उछल कूद मचाई। और सोचा – गड्ढे और चट्टान का तो पता ही न लगता होगा इस पर। सीट को घर ले जाएं तो कितना अच्छा हो। सोते समय तकिया बन जायेगा और खाते समय पीढ़ा पर फिर सोचा – "बाप रे! ड्राइवर तो मार डालेगा।" ये कहानियाँ भारतीय गांवों में बसने वाले करोड़ों लोगों की जीवन शैली को दर्शाती हैं और छोटी छोटी आंखों में पलने वाले सुनहरे सपनों की पहचान कराती हैं। बच्चों के निश्छल व पवित्र मन के भीतर उठने वाले अनोखे सवाल एक तरफ पाठक को गुदगुदाते हैं और दूसरी तरफ सोचने पर भी मजबूर कर देते हैं।

शिक्षा साहित्य जगत, सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार व शिक्षकों, बुद्धिजीवियों के चरित्र और उनकी चिंता को लेकर जिस बेबाकी व ईमानदारी से कहानीकार ने चित्रण किया है वह एक संवेदनशील पाठक के मन को आंदोलित करके रख देती है। ऐसा करने के लिए कहानीकार ने व्यंग्य का सहारा लिया है। उनकी ईमानदारी इस बात से भी प्रमाणित होती है कि वह कई कहानियों को आत्मकथ्य की शैली में बुनते हैं, जिसमें वे स्वयं की भी कमजोरियों पर व्यंग्य करते हैं जो अंततः मानवीय कमजोरियों पर व्यंग्य करते हैं। 'सेमिनार' कहानी में कथाकार की टिप्पणी व्यवस्था की पोल खोलने के लिए काफी है – 'लंच के कारण और उसके बाद सेमिनार की सफलता को लेकर किसी के मन में कोई संदेह नहीं रहा था।' कथाकार प्रो. आचार्य स्वयं भी एक पात्र की भांति उपस्थित होकर अपनी कमियों पर व्यंग्य करते हैं जिससे पाठक को यह विश्वास होता चलता है कि दूसरों की आलोचना करने का अधिकारी वही है जो स्वयं की भी आलोचना सुनने का साहस रखता हो। उनकी यह चिंता 'स्कूल', 'सेमिनार', 'पुरस्कार' और 'प्लाट का गच्चा' इत्यादि कहानियों में स्पष्ट दिखाई देती है।

कथाकार पी. सी. आचार्य एक इतिहासकार के रूप में कई दशकों से शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हैं। इतिहासकार की दृष्टि तथ्यों पर अधिक होती है। इतिहास को तथ्यों की व्याख्या के रूप में स्वीकार किया जाता है किंतु साहित्य में तथ्य की बजाय संवेदनाओं को सहेजा जाता है। प्रो. आचार्य की कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी कहानियों में भी वह इतिहास लिख रहे हैं पर अंतर यह है कि इसमें वे संवेदनाओं का इतिहास लिख रहे हैं। ये संवेदनाएं जो कालजीवी हैं और चिरकाल तक मानव मन को प्रभावित करते रहने का सामर्थ्य लिए हुए हैं। 'कुड़िम', 'परोमा', 'कलेक्टर की दोस्ती', 'स्वांग जा सच' इत्यादि कहानियां बहुरंगी संवेदनाओं को समेटे हुए हैं। 'पाटपुर चौक' कहानी 84 के दंगों पर आधारित कहानी है जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज की तरह पाठक के हृदय में संरक्षित हो जाती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि ये कहानियां गहन जीवन बोध का एक रचनात्मक पुंज हैं। सामाजिक संपृक्ति ही उनकी कहानियों की पहचान है। शिक्षा के क्षेत्र में कई दशकों से सक्रिय कहानीकार निजी अनुभवों से उपजे गहरे असंतोष और आक्रोश, व्यवस्था के भ्रष्ट स्वरूप को उसकी सूक्ष्मताओं में व्यक्त किया है। इन कहानियों के माध्यम से कथाकार आत्म समीक्षा के बहाने समाज समीक्षा करता हुआ पाठकों को निरंतर चैतन्य बनाये रखता है।

'इति दुविधा कथा', प्रीतीश आचार्य, रोशनाई प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली।

समीक्षा

# राष्ट्र को सर्वोत्तम बनाने की कवायत है : नदी बहती रही

रमेश खत्री
पूर्व संपादक, नेट मैगजीन साहित्यदर्शन डॉट इन
प्रतापनगर, जयपुर

फ्रेडरिक एंगेल्स ने जब 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य' की संस्थाओं के बीच ऐसे रिश्तों की मौजूदगी की बात की – जो इन तीनों को न सिर्फ गढ़ते और रचते हैं, बल्कि इन्हें बनाये रखने में भी मदद करते हैं, तो उसके सामने यूरोप का समाज था। बेशक इन रिश्तों को बनाने वाले नियम वैज्ञानिक सोच और समझ का नतीजा है, परन्तु इनके आधार पर जब हम दूसरे मानव. समाजों और सभ्यताओं का अध्ययन करते हैं, तो हमें कुछ और जटिलताएं भी दिखाई देती हैं, जिनकी व्याख्या के लिए हमें रिश्तों के दायरों का थोड़ा विकास और विस्तार करना पड़ सकता है।

कहा तो यह भी जाता है कि उपन्यास किसी भी समाज के अंतर्बाह्य का प्रामाणिक लेखा होता है। यह सच को उस रूप में प्रस्तुत करता है जिसे प्रायः हम देख नहीं पाते या जो, संभवतः अभ्यास की कमी के कारण हमसे दृष्टि ओझल होता रहता है। बीते समय में उपन्यास की लोकप्रियता का कारण ही यह रहा है कि पाठक इसमें न केवल अपने अनुभवों की झलक पा सकता है, बल्कि अपने पात्रों के साथ उठ.बैठ और बतिया सकने तक का स्पेस उसके पास होता है, जिसमें वह अपने परिचित.अपरिचित समाजों की नब्ज को पहचान सकता है। अतः उपन्यास के पक्ष में दिया गया यह बयान बिलकुल सच लगता है कि 'वह काल्पनिक पात्रों के सहारे लिखा जाने वाला वास्तविक इतिहास होता है। उसमें वे पात्र भी स्थान पा लेते हैं जिन्हें इतिहास प्रायः उपेक्षित मान लेता है या जो उसके तंग खाते में फिट नहीं बैठ पाते अथवा जिन्हें संस्थान विरोधी बताकर हाशिये से बाहर रखने की कोशिशें की जाती हैं। समाज के वास्तविक नायकों को इतिहास बहिष्कृत करने का खेल चूँकि सत्ता की केन्द्रीकता से जुड़ा है, जिसका चरित्र प्रायः अपरिवर्तनशील होता है, अतः इतिहास के दायरे में वास्तविक नायकों को पीछे ढकेलने की प्रक्रिया, प्रकारान्तर में थोड़े.बहुत बदलावों के बावजूद हर एक समाज में अनवरत रूप से चलती रहती है, जिसको स्वर देने के कारण उपन्यास और साहित्य की शेष विधाएँ हमेशा अपनी प्रासंगिकता बनाए रखती हैं। हालांकि इसी दौर में उन्हें अपने परिवर्तन और परिमार्जन की प्रक्रियाओं से भी गुजरना पड़ता है, जिसके द्वारा वे अभिव्यक्ति के युगानुकूल माध्यमों से स्वयं को समृद्ध करने का काम करती है।

हम देखते हैं कि वर्तमान समय में जीवन.जगत की वास्तविकताओं को यहाँ तक कि अपरिचित समाजों को चरित्रों को, संस्कृतियों को और देशों को परचाने के लिए उपन्यास से सशक्त दूसरा कोई माध्यम नहीं है। अभी हाल ही में डॉ. सुदेश बत्रा का उपन्यास, 'नदी बहती रही' मोनिका प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में भी दो संस्कृतियों को चित्रित किया गया है। एक तरफ भारतीय संस्कृति है तो दूसरी तरफ अमेरिकन संस्कृति। यह उपन्यास अपने कथानक में उन अन्तर्संबंधों को परत.दर.परत खोलता है जो पूंजीवादी समाज में दबा हुआ है। उसकी परतों को खोलने के साथ वह उनको भारतीय संस्कृति के उन अणुओं में ढालने की कोशिश करता है जो सदियों से हमारे अंतर्मन में बसी हुई है। यह कथा यात्रा दरअसल एक माँ की नज़र से देखा गया वह कोलाज है जो उसके दो बेटों के बीच में पसरा हुआ है, और वह इन दो किनारों के बीच सतत् बहती रहती है।

उपन्यास का कथानक दो बेटों के इर्द.गिर्द बुना गया है। दोनों ही डाक्टर हैं। एक बेटा अपनी पढ़ाई के दौरान ही अमेरिका चला जाता है और फिर वहीं पर हमेशा के लिए सेटल हो जाता है। दूसरा बेटा भी अमेरिका जाना चाहता है किन्तु किन्हीं कारणों से जा नहीं पाता और उसके मन में यह बात फांस की तरह फसी रह जाती है। इन दोनों के बीच में नदी के रूप में एक माँ है जो दोनों को ही ढांढस देती रहती है। यही उलझन और उनके भटकावों के बीच से राह तलाशती कथायात्रा आगे बढ़ती है और उस मुकाम पर पहुँची है जहाँ किनारों का संगम होता है। अक्सर बड़े निर्णयों में नन्दिनी दिल और दिमाग की लड़ाई में उलझती रहती है। उसे लगता है, दिल से किया गया निर्णय भावुकता से प्रेरित होता है, किन्तु दिमाग से लिया गया निर्णय बौद्धिकता से जुड़ा होता है, जो आरंभ में कठोर लगता है, किन्तु भविष्य में अच्छे परिणाम देता है।"

समीक्ष्य उपन्यास में लेखिका डॉ. सुदेश वत्रा कहती है, "हमारे देश में अमेरिका प्रवास एक हसरत जगाता है, आज मध्यवर्गीय परिवारों के अधिकांश घरों का एक न एक सदस्य अमेरिका जाकर बस गया है, या कि बसना चाहता है।... संतान मोह में बंधे.बंधे माता.पिता भी कुछ महीनों के लिए वहाँ हो आते हैं। जहाँ युवा पीढ़ी प्रसन्न है, वहीं बुजुर्ग लोग बड़ी जल्दी उकता जाते हैं और जल्दी ही लौट आते हैं अपनी उसी दुनिया में। उनके लिए यही सुकून है, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपना खानपान और अपने लोग। वहाँ के वातावरण में घुली चुप्पियाँ उन्हें रास नहीं आती, दरवाज़े पर छोटी.छोटी सुविधाएँ पा लेने वाले भारतीयों को वहाँ के विस्तार और व्यवस्था रास नहीं आते, क्योंकि वे स्वयं को गुमनाम पाते हैं, फिर भी वहाँ से लौटकर के वहाँ से यहाँ की तुलना जरूर करते हैं। मन में कहीं गर्व भरा पुलक भी रहता है, पर साथ ही अपनी औलाद से बहुत दूर और अकेले रहने की उदासी भी।"

उपन्यास का समूचा परिवेश तथा पात्र दो हिस्सों में बँटा हुआ है, एक तरफ है भारतीय परिवेश, यहाँ आपसी व्यवहार, सम्बन्धों की आवाजाही, अपनेपन का गहन बहता स्रोत जिसमें पगे पात्र अपनी संस्कृति को बखूबी बयान करते नजर आते हैं तो वहीं दूसरी तरफ अमेरिकन परिवेश है, वहाँ की भाषा है, संस्कृति है, और इन सबके बीच कहीं गहरे बहते हुए मौन हैं जो बहुत कुछ कह जाते हैं न चाहते हुए भी, "नन्दिनी की आँखों में कई सवाल थे, मगर वहाँ एक आश्चर्य भी था, पश्चिमी परिधान और गहरी लाल लिपिस्टिक में सजी स्त्रियाँ, साथ ही गहरे चटक रंगों के भारतीय सलवार कमीज में सजी स्त्रियाँ, उनके साथ कीमती साड़ियों के साथ कीमती आभूषण पहने पल्लू को संवारती स्त्रियाँ, खूब सारे पुरुष, बच्चे सभी के चेहरे हिन्दुस्तानी थे। उसे लगा जैसे टी.वी. से निकलकर ढेर सारे मॉडल्स उसके सामने घूम.फिर रहे हैं।" उपन्यास को पढ़ते हुए एक.एक बारीक बात हमारे सामने खुलती चली जाती है। यह उपन्यासकार की सफलता है कि वह कथानक का ताना.बाना इतनी सुघड़ता के साथ बुनती जाती है कि भविष्य की घटनाओं को लेकर पाठक की जिज्ञासा लगातार बलवती होती रहती है, "प्रवासी भारतीयों की इस पीढ़ी ने भारतीय समाज की पुरानी परंपराओं और बंधनों से निकलकर अमेरिका में आजादी का एक नया अर्थ तलाश लिया था। न सामाजिक रोक, न बड़े.बुजुर्गों की तीखी हिदायतें, डॉलरों की चमक, बड़े.बड़े खुले बंगलों की शान, तीन.चार गाड़ियों का नशा, और दो.दो सभ्यताओं का कॉकटेल। अमेरिका में रहना भारतीय प्रवासियों के लिए स्टेटस सिंबल है। यहाँ की स्त्रियों के लिए कल्पना चावला या किरण बेदी रोल मॉडल नहीं हैं। इन्हें बॉलीवुड की अभिनेत्रियाँ, उनके ड्रेस डिजाइनर के कपड़े अधिक सुहाते हैं, उन पर अमेरिकन इंग्लिश का तड़का।"

समीक्ष्य उपन्यास के वृत्तांत में कई स्थानों पर हम एक तरफ भारतीय संस्कृति और परिवेश को पाते हैं, तो दूसरी तरफ अमेरिकन संस्कृति के ताने.बाने में उलझे हुए प्रवासी भारतीयों का जीवन है, 'काफी देर बाद उसने मुड़कर देखा नीता नहाने के लिए ऊपर चली गई थी। रसोई साफ.सुथरी

चकाचक थी। नाश्ते और लंच की तैयारी के कोई आसार नहीं थे। साढ़े नौ बज चुके थे। नन्दिनी डायबिटीक है। सुबह दवाई लेने के बाद उसे इस समय तक नाश्ता करने की आदत है, वरना उसे चक्कर आने लगते हैं। वह धीरे से उठी और फ्रिज खोला। ढेर सारी सब्जियों के डिब्बों के बीच एक छोटे से डिब्बे में गुथा हुआ आटा मिल गया। उसे बाहर निकालकर उसने तवा ढूंढना शुरु किया। वह उसे बड़े अवन के अंदर ढेर सारे बर्तनों के बीच मिला। सबसे मुश्किल था गैस जलाना, बिना सिलेंडर, बिना लाइटर की गैस बहुत डरते. डरते जलाई। फिर ढूंढा थोड़ा सा सूखा आटा पलेथन के लिए। अब चाहिए तेल जो उसे किचन स्टोर में मिला। सब कुछ इकट्ठा कर उसने एक पराठा बनाया, उसका मन हुआ एक नीता के लिए भी बना दे।" (पृष्ठ 20) हम देखते हैं कि दोनों संस्कृतियों के ध्रुवों के बीच इलास्टिक की तरह खींचती हुई एक माँ की ममता के कई दृश्य इसमें गुंथे हुए हैं, "अतीत कभी पीछा नहीं छोड़ता। नन्दिनी आज भी सोचती है कि किसी भी सुंदर इमारत का अगर मूल स्वरूप देखा जाए तो ज्ञात होगा कि ज़मीन कितनी झाड़.झंकाड़ों से भरी पथरीली और बेतरतीब है, उसे समतल बनाने में और एक.एक ईंट चुनने में न जाने कितनी मेहनत, कितना पसीना, कितने ज़ख्मों, कितनी धूप सहनी पड़ती है। लेकिन बनाने वाले के सामने एक नक्शा, इमारत का एक चेहरा तो होता ही है तभी तो हर इमारत अपना अलग अंदाज, अलग लक्ष्य और अलग रंग.रूप लेकर उभरती है। हाँ, इतना जरूर है कि कंगूरों की खूबसूरती देखकर नींव के पत्थरों को नहीं भूलना चाहिये।"

इस उपन्यास में अपने समय और संस्कृति के साथ भाषा को भी पकड़ने का लेखिका ने प्रयास किया है। इसी के बरक्स आपसी समन्वय और उससे उत्पन्न संघर्ष कई स्थानों पर स्पष्ट दिखाई देता है और यह बात सबसे ज्यादा दो संस्कृतियों के सेतु रूप के प्रयोग में अपनायी जा रही भाषा को लक्षित करती है, "तुम जानते हो, मैंने पहले पाँच साल कितने कष्ट, संघर्ष और विश्वासघात में गुजारे हैं। इंसान की फितरत कम.ज्यादा सब जगह एक सी ही रहती है। भारत में बहुत सफल डाक्टर, उद्योगपति, इंजीनियर आदि रहते हैं, इसलिये वहाँ के सफल लोगों को निकट से देखने की कोशिश करो। खासकर वे लोग, जो अपने बलबूते पर सफल हुए हैं, उनकी कार्यशैली, कठोर परिश्रम, व्यवहार कुशलता, अधिक से अधिक और लेन.देन में अति सतर्कता। साथ ही शांत.शिष्ट और मीठा व्यवहार। आधी सफलता तो मीठा बोलने से ही मिल जाती है। धैर्य रखना बहुत जरूरी है। मनवांछित बहुत जल्दी नहीं मिलता, लेकिन गुणवत्ता से पहचान मिलने लगती है। याद रखो, दृश्यता अर्थात विजीबिलिटी बनी रहनी चाहिए।

इसकी कथा.वस्तु के साथ हम अमेरिकन संस्कृति, धर्म और परमपरा का ही नहीं बल्कि वहाँ की शिक्षा, वहाँ के चरित्र, वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों को भी कथारस से पकड़ते हुए उसमें घुल मिल जाने का अवसर मिलता है। दो संस्कृतियों के बीच की दूरियों को पाटने में लेखिका ने जिन औजारों का प्रयोग किया है वह भाषा है, जो एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक निर्विध्न बहती रहती है। और उन कालखंडों को पकड़ने का प्रयास करती है जो जाने.अनजाने छूट गये हैं, "नन्दिनी के पैर वहीं जम गए थे। उसे राम कथा याद आ गई। कौशल्या ने कैसे भेजा होगा राम को बनवास में? राम तो चौदह साल के लिए गए थे, पर उसका बेटा...? विदेश गमन दिल और दिमाग की लड़ाई थी। नन्दिनी को लगा जैसे उसके बेटे को एक विशाल समंदर में फेंक दिया है और उसे तैरना भी नहीं आता।" (पृष्ठ 109)

लेकिन समय का बहता हुआ दरिया जीवन में नवजागरण की अनुगूंज को सुन पाता, और उस बदलाव में रचना कैसे अपनी भूमिका निभा पाती यह संभव होता है सृजन सरोकारों से। कथानक में आई घटनाओं में सांस्कृतिक समय की आवाजाही कहीं.कहीं अवश्य झलकती है, पात्रों की छटपटाहट सृजन के बदलाव की तरफ इशारा करते हैं, क्योंकि यहाँ यथार्थ उतना ही आता है जितना पात्रों के निजी संघर्षों से जूझते हुए देख, पढ़ और समझ पा रहे हैं, "यह मृगतृष्णा नहीं तो और क्या है? सारी उम्र एक सपने के पीछे भागते हैं और जब सपना परवान चढ़ता है तो ही कहीं पीछे छूट जाते हैं, वक्त के साथ दौड़ने का दम.खम ही नहीं बचता। सहम.सहम कर बोलना और फूँक.फूँक कर चलना जब दिनचर्या में घुल जाता है तो वातावरण की हवा भारी हो जाती है, पर यही सच है, अनुभवों की प्रौढ़ता और संस्कारों की गतिशीलता के तालमेल गड़बड़ा जाते हैं।"

उपन्यास की रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए डा. सुदेश बत्रा कहती हैं, "इसमें मैंने इन सवालों को रखने की कोशिश की है, आखिर हमें स्वयं को तलाशना होगा कि हम अपने देश को और स्वयं को ही इतना कर्मठ और सफल क्यों न बनाएं कि अपनी मातृभूमि हमें सर्वोपरि प्रतीत हो। शिक्षा, कानून, व्यवस्था, अनुशासन, नैतिकता जैसे अनेक आयाम हैं, जो हमारे देश के विकास को एक नई पहचान देते हैं। आखिर खुशी, सफलता और सार्थकता की परिभाषा क्या है?" इससे आगे जाकर वो कहती हैं, "एक माँ का जीवन जब दो हिस्सों में बंट जाता है तो वह किसी एक के प्रति दुराग्रही नहीं हो सकता। वर्तमान जीवन की विडंबना और महत्वाकांक्षाओं के भंवर का पुनर्मूल्यांकन करने की जिज्ञासा ने ही इस उपन्यास के कलेवर को रचा है।"

समीक्ष्य उपन्यास की मुख्य पात्र नन्दिनी है। वह पूरे उपन्यास में घनेरे बादल की तरह छाई हुई है किन्तु उनके पति प्रकाश का पूरे उपन्यास की कथायात्रा में तनिक सा भी योगदान नहीं है। यह पात्र सदा ही निरपेक्ष बना रहता है, "प्रकाश को मालूम था, नन्दिनी जवाब सुने बिना नहीं मानेगी। बहुत देर बाद बोले, "आने तो दो आनंद को, फिर सोचेंगे।" कहकर वे उठ गए। (पृष्ठ 62) तथा "प्रकाश रिटायर होकर लौट आए थे। (पृष्ठ 73) इसी तरह, "प्रत्येक दो या तीन वर्ष में प्रकाश के ट्रांसफर के कारण वे लोग कभी स्थिरचित्त नहीं हो पाए। प्रकाश कभी सप्ताहांत पर, कभी महीने में दो दिन के लिए आ पाते थे।" पूरे उपन्यास में उनका बस इतना ही योगदान है। प्रकाश की निरपेक्षता किसी कांटे सी चुभती है। परिवार के सभी फैसलों से परिवार में रहकर भी किस तरह से निरपेक्ष रहा जा सकता है, यह विचारणीय है। समूची कहानी में इस पात्र की भूमिका पूरी तरह से निरपेक्ष बने रहने की है।

निश्चित तौर पर उपन्यास को पढ़ते हुए बार.बार यही लगता है कि समय कोई भी हो, संस्कृति कोई भी हो, रचनाकार की सामाजिक हैसियत कुछ भी हो, पर जब वह अपने समय से आगे की रचना करते हुए यथास्थिति को बदलने की कोशिश करता है, तो निश्चित तौर पर उसका लिखा एक तरफ पाठकों को कायल बनाता है, तो वहीं दूसरी तरफ उसका जीवन लोगों की आँख की किरकिरी बन जाता है। इस उपन्यास में सम्बन्धों की परतों को खोलते हुए सही.गलत की बहस से अलग बहुत तटस्थता से पारिवारिक सम्बन्धों की परतों को खोलते हुए पूरब और पश्चिम की संस्कृति के बीच कोई सेतु रचने का प्रयास किया गया है। इसमें जीवन के मामूली दिनों की छोटी–छोटी घटनाओं को पकड़ते हुए उसमें बहते हुए भावों की गहराई को हम अनुभव करते हैं। यह एक रचनाकार की सफलता तो कही ही जायेगी किन्तु इससे उभरे कथारस में भीगते हुए हम अपने विचारों की परिपक्वता को भी अनुभव करते हैं। यह एक रचनाकार की सफलता तो कही ही जायेगी किन्तु इससे उभरे कथारस में भीगते हुए हम अपने विचारों की परिपक्वता को भी अनुभव करते हैं। यह रचनाकार की और रचना की सार्थकता भी कही जायेगी। इस रूप में भी यह पठनीय और संग्रहणीय कृति बन पड़ी है।

नदी बहती रही, डॉ. सुदेश बत्रा, मोनिका प्रकाशन, जयपुर

समीक्षा

# स्मृतियों की असाधारण संवेदना

रेखा भाटिया
लिंडन ट्री लेन, शार्लेट,
नॉर्थ कैरोलाइना, यू. एस. ए.
मोबाइल–7049754898

विशिष्ट लेखक पंकज सुबीर का लघु खण्ड काव्य 'देह.गाथा' अभी हाल ही में शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस लघु खण्ड काव्य के लिए अनीता दुबे ने रेखाचित्र तैयार किए हैं। एक नज़र में यह खण्ड काव्य किसी कामसूत्र.सा प्रतीत हुआ, सोचा था कुछ दिन मौन रहकर आराम करूँगी और इस क़िताब को पूरी तरह दिमाग़ ख़ाली कर सबसे अंत में पढ़ूँगी। एक बार पढ़ना शुरु किया था, दिमाग़ में मची खलबली और व्यस्तता ने इसे यूँ ही पढ़ने की अनुमति नहीं दी। वैसे पंकज सुबीर की क़िताबों को मैं हवाई सफ़र, यात्राओं या एकांत में अपनी दुनिया में सिमट कर पढ़ना पसंद करती हूँ। उनका लेखन दुनिया और पाठक के बीच एक रेखा खींच कर अपनी ओर खींच लेता है। दिल और दिमाग़ दोनों के तारतम्य को एक सार में रखना पड़ता है उनकी रचनाएँ पढ़ने के लिए! गंभीर लेखक पंकज सुबीर की काव्य पुस्तक 'देह गाथा' सूर्य की पहली किरण है, जो भोर में सूर्य के चमकने से पहले सिंदुरी छटा बिखेरती दिन के आगमन की रोमांचक दस्तक देती है, युवावस्था के सूरज के उदय से पहले की कोमल भोर की किरण समान है।

यह काव्य पुस्तक एक ही साँस में तरन्नुम.सी बजती, लहरों पर डोलती, झीने.झीने मन में डोलती समुंदर के उस गहरे रहस्य को परत दर परत खोलती है, जिसे हर युवा मन उस ज़माने में सात सौ तालों में बंद कर चाबी खुद से भी छिपा लिया करता था –

"है अतीत का धुँधला.दर्पण, उसमें धूमिल.सा प्रतिबिम्बन,
सदियों से ठिठका सुधियों में, जीवन का वह प्रथम.प्रभंजन,
अब जो सोचूँ तो लगता है, कितनी सदियों बात पुरानी।
बीत चुकी है वर्षो पहले, किन्तु नवल अनुराग.कहानी।
एक प्रतीक्षारत.अलाव को, जब था मिला प्रथमतः ईंधन।।"

प्रथम स्पर्श शायद भूलें लेकिन प्रथम बार जब सम्पूर्ण सृष्टि का द्वार खुल जाता है, पहले एहसास का मादक पहला गहरा अनुभव जिसे देहों ने भोगा, उस चरम को जो सृष्टि का सत्य है हर जीव के लिए। जिससे प्रेम उपजता है, नव अंश की ऊर्जा जन्म लेती है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी की पंक्तियाँ, "अंत और अनन्त के तम.गहन.जीवन घेर, मौन मधु हो जाए, भाषा मूकता की आड़ में, मन सरलता की बाढ़ में जल.बिन्दु सा बह जाए''।

सरल अति स्वछन्द" मौन की उसी अनंत कसमसाती नदी को, जहाँ जटिल सरल हो जाता है और सरल अति जटिल, पंकज सुबीर ने बड़े चाव से बहाकर गहन मंथन किया है।

"तभी मौन की सार्थकता का, मिला हृदय को प्रथम ज्ञान था।" यह उनका मौन प्रचंड गुंजन है, "चेष्टाएँ थीं मूक.मूक.सी, शब्दहीन.सा था आंदोलन" कामदेव के इस सम्मोहन को शब्दों में उतार पाना बहुत टेढ़ी खीर होता है। देहों का गणित चरित्रों के गणित से गहरा जुड़ा है, भारत जैसे देश में जहाँ 'कामसूत्र' की रचना की गई हो, खजुराहो जैसे मंदिर का निर्माण किया गया है, वहाँ आज भी इस विषय पर पहेलियों में बात की जाती है। यह सही है कि वक्त के साथ आते सामाजिक, मानसिक और आर्थिक बदलाव ने वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया है, समाज, सोच, रहन.सहन, पहनावे, जीवन शैली, मीडिया, सिनेमा में बहुत खुलापन आ गया है जिससे अश्लीलता और फूहड़पन सहज सामाजिक जीवन में व्याप्त हो गया है। यहाँ कहना बहुत उचित होगा कि पंकज सुबीर की लेखनी ने अश्लीलता के ढोंग से उनकी काव्य रचना को साफ़ बचाकर, नीरसता और दूरी बनाकर एक बहुत उच्च स्तर के कलात्मक काव्य की रचना की है। चित्रकार अनीता दुबे ने इस काव्य के हर चित्र का चित्रांकन उसी कुशलता से उसी स्तर पर किया है। इस काव्य के हर शब्द के दर्पण को चित्रों में सुवासित कर सार्थक किया है। जैसे प्रेम के लिए परस्पर दो की अनिवार्यता और पूरकता होती है, जिसकी कल्पना एक.दूसरे के बिना अधूरी है।

"मर्यादा की सीमा से कुछ, बाहर हम आये थे चल कर, कायाएँ कुसुमित होती थीं, एक नवल साँचे में ढल कर, प्रलय बीतने पर होना था, नवल.सृष्टि का फिर से सर्जन।" एक यायावर मन से सारे बाँधों और बंधनों को तोड़ कर प्रथम अनुभव के सौंदर्य को बेझिझक, बेबाकी से अपने मनोभावों को प्रकट कर पंकज जी ने उत्सव मनाया है। उस उत्सव की तरंगों में आह्लादित सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का समन्वय पंकज सुबीर को तृप्त करता है। इस साहित्यिक कला कृति में रूहानी लयबद्धता है, समसामयिक से परे यह याद दिलाती है उस काल की जब ध्वनियों की पुनरावृत्ति में बहकर पाठक कंठस्थ कर लेता था काव्य को। एक ही भाव में पूरा काव्य रचा गया है। यहाँ कई बिम्बों, प्रतिबिम्बों के माध्यम से भावनाओं का आवेग बहता है। प्रकृति की छाँव में अंबर से धरा तक अति कोमल मनोभावों का विस्फोट है, "नीलगगन की ऊँचाई में, उड़ते हुए युगल पल्लव थे, क्षण.क्षण में होता था जैसे, सृजन शिल्प का और विखण्डन।" आधुनिक युग से उस युग तक सेतु का काम करते हैं। स्मृतियों के असाधारण संवेदन को भीतर दबा.छिपा, लेखक हृदय भीतर दबोच न सका और स्मृतियों का एक ज्वालामुखी उद्भूत हुआ है, जिसके शक्तिशाली लावा से लेखन ने स्वयं को तृप्त किया है, "जैसे असंतृप्त. आत्माएँ, शक्तिशाली होतीं मावस को। भीषण.तड़ित गगन में कौंधी, और हुआ मेघों में घर्षण।"

पंकज सुबीर का भीतरी संघर्ष चलता है और लेखक स्वयं के अन्वेषण से अचंभित है, "बोधि.वृक्ष की छाया ने फिर, योगी को निर्वाण दिया था। सब विस्मृत करना होता है, करने प्रणय.कर्म निर्वाहन।" लेखक अपनी स्मृतियों से प्रेयसी की तरह अनुराग करता है, "संज्ञा शून्य अवस्था में तब, केवल शेष रहा अवलोकन। कस्तूरी.मृग के जैसे ही, खोज अभी तक है सुगंध की।" आह्लादित है यह ज्वार भावनाओं और रेखाचित्रों का, जैसे एक नई ऊर्जा ने जन्म लिया हो! विज्ञान के नियमानुसार ऊर्जा न उत्पन्न की जा सकती है, न नष्ट की जा सकती है, उसे एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। जब ऊर्जा के दोनों रूप एक जैसे हों तदुपरांत दोनों ऊर्जाओं का समन्वय हो, तब नई ऊर्जा जन्म लेती है, जैसे काव्य ने जन्म लिया है।

"उन्मादित गजराज वहाँ जब, रौंद रहा था पुष्पलताएँ।
मेघ हुई यूँ उन्मत्त जैसे, सुरापान कर आया श्रावण।"

देहों की ऊर्जा से उपजे मन के भावों को पंकज जी ने कभी निश्छल

पानी की तरह बहाया है, कभी पतंग की तरह स्वच्छंद खुले आकाश में उड़ाया है, कभी मदमस्त, इठलाती, बेकाबू हवा.सा झुमाया है, कहीं तपती धरा में पड़ती शीतल जल की बूँदों.सा झमझमाया है। नव युवा मन के हर भाव कली को शनैः.शनैः खिलाकर सुंदर पुष्पों में व्याख्या दी है। अनीता दुबे के कला बोध से ओत.प्रोत रेखाचित्र हर शब्द के सम्मुख सहज ही कवि की गहन आतुरता को ऊष्मा का प्रेम प्रदान करते हैं। इन रेखा चित्रों ने 'देह.गाथा' काव्य को पूर्ण रूप से सम्पूर्णता प्रदान की है। पंकज सुबीर ने अंत:प्रेरणा से प्र ति के उजले आँचल की छाँव में मन के उष्ण भावों को पनाह दी है, प्र ति का दामन थामा है। प्रकृति यहाँ चुपचाप अपना काम करती है बोलकर नहीं, हृदय की मिट्टी में उर्वर बनकर।

आनंद पाने की कुंजी है, पंकज जी ने जितना कहा है, उससे अधिक अनकहा महसूस कराया है। यही विशिष्टता है उनके लेखन की। सृष्टि की सुन्दर रचना, प्रेम के कोमल भाव और देहों का उल्लास इस विरले काव्य में खूबसूरती से रचे.बसे हैं। जब बाल्यकाल और किशोरावस्था से निकल जीवन युवावस्था की प्रथम देहरी पर क़दम रखता है।

देह.गाथा (लघु खण्ड काव्य), पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. – 466001

समीक्षा

# शंकर दयाल ओझा की कृतियाँ

भगवती प्रसाद द्विवेदी
नासरीगंज,
दानापुर, पटना (बिहार)
मोबाइल – 9304693031

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' के अनुसार, कवियों के लिए भी निकष का पैमाना गद्य को ही माना गया है। शंकर दयाल ओझा, जो एस.डी. ओझा के रूप में ज्यादा लोकप्रिय हैं, सही मायने में कथेतर गद्य के एक हरफनमौला सिरजनहार हैं और इनके गद्य में जगह.जगह काव्यात्मकता एवं कथात्मकता सुधी पाठकों को अभिभूत कर देती है। पैरामिलिट्री फोर्स से डिप्टी कमांडेंट ब्रह्मअभियंताऋ के पद से सेवानिवृत्त ओझा जी बाल्यकाल से ही मशहूर पढ़ाकू रहे हैं और बलिया जनपद (उत्तर प्रदेश) के नवकागांव, झरकटहां में जन्मे, पले.बढ़े तथा भारत सरकार की सेवा में पूरे देश का भ्रमण कर अंततः मोहाली (पंजाब) के लौहगढ़ में स्थायी तौर पर जा बसे। मगर उनकी स्मृति में अब भी अपने गाँव का लौकिक परिवेश और वहाँ की खट्टी.मीठी कथाएं बरकरार हैं, जिनको जीवंतता के साथ उकेरा है उन्होंने सृजन फ्लाइड्रीम्स पब्लिकेशन, जैसलमेर, राजस्थान से सद्यः प्रकाशित अनूठे संग्रह 'सबरंग' में।

जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, 'सबरंग' में जीवन–जगत के तमाम इंद्रधनुषी रंग एक साथ मौजूद हैं। भाषा, साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास, भूगोल, दर्शन – आखिर क्या नहीं है इसमें! एक सौ अठहत्तर पृष्ठों में फैले इस संग्रह में कुल बहत्तर रचनाएं संग्रहीत हैं, जिनमें निबंध का लालित्य है, तो किस्सागोई की सरसता भी है। अपनी ममतामयी माँ को अपनी कृति समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है – "माँ को समर्पित, जिसका प्यार मुझे तपती दोपहरी में शीतल छाया और ठिठुरती सर्दी में अलाव का सुख देता रहा है।" उन्होंने माँ को संबोधित एक संस्मरण 'सुन रही हो न, माँ!' में उन्हें शिद्दत से याद करते हुए उनकी नाक की नकबुली (झुलनी) की खास तौर से चर्चा की है, जो आगे चलकर 'जिउतिया' बनवाकर उनकी धर्मपत्नी को सुपुर्द कर दी गई थी। माँ के अलावा उन्होंने 'सहोदरा मइया' और 'बड़की माई' से जुड़े संस्मरणों को भी करीने से सजाया है।

'सबरंग' में रेखाचित्र, ललित निबंध, रिपोर्ताज, गंवई लोकजीवन के किस्से, पसंदीदा विश्व काव्य की अनुवाद के साथ प्रस्तुति – यानी, 'ऑल इन वन' (एक में अनेक) की आनन्दानुभूति मंत्रमुग्ध किये बगैर नहीं रहती। श्रीगणेश 'मीठी लगे तेरी गाली रे!' से होता है और समापन होता है 'जीवन संध्या पर खुशी' से। हर रचना में लेखक ने सकारात्मक पक्ष को उजागर करने की यथासंभव कामयाब कोशिश की है। रेखाचित्र आजकल बहुत कम रचे जा रहे हैं, पर शंकर दयाल जी ने 'त्रिकालदर्शी थे सहदेव', 'व्यक्ति एक: नाम अनेक', 'गंगाधर के किस्से', 'भाई का बरइछा', 'एक मासूम की बदनामी का गम', 'एक थे शिवखेलावन', 'भगजोगनी' आदि व्यक्तिचित्र अथवा रेखाचित्र के जरिए निचले तबके के लोगों में छिपी मनुष्यता व संवेदनशीलता को प्रभावी अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने एक तरफ डॉ धर्मवीर भारती के 'ठेले पर हिमालय' की खूबियों को रेखांकित किया है, तो दूसरी ओर लोकप्रियता की दृष्टि से 'एक थे गुलशन नंदा' के लुगदी साहित्य को भी अहमियत दी है। लोहा सिंह (रामेश्वर सिंह काश्यप), सुल्ताना डाकू, टॉम ऑल्टर जैसे चरित्र भी उनकी रचनाशीलता की जद में हैं। 'मैकलुस्कीगंज के एंग्लो इंडियन परिवार', 'कलकत्ता से लंदन का बस में सफर', 'बक्सर की ऐतिहासिकता', 'आरा जिला घर बा', 'मेनारिया समाज', 'बागी बलिया' आदि ऐतिहासिक.सामाजिक विषयों पर भी आपने गंभीरता से दृष्टिपात किया है। उन्होंने फिल्म से जुड़े एक खानदान का लेखा.जोखा भी प्रस्तुत किया है, जिसमें कथावाचक नरसिंह मेहता से लेकर रतनबाई, शोभना समर्थ, नूतन, तनूजा, काजोल, मोहनीश बहल, रानी मुखर्जी तक की रोमांचक दास्तान पेश की गई है। आखिरी कथा रधिया पासवान और दीपक पाण्डेय की रोमानी प्रणय कथा है, जो तमाम सामाजिक बंदिशों को धता बताते हुए परिणय के अंजाम तक पहुंचती है।

कुल मिलाकर, एस.डी.ओझा ने स्मृति के वातायन से झांकते हुए नीर.क्षीर विवेक का परिचय दिया है और हंस की भांति मोती चुगते हुए अपने हृदयोद्गार को सहजता से अभिव्यक्त किया है, जो कभी अंतर्मन को स्पंदित, आह्लादित करता है, तो कभी मर्म को छूकर मानवीय करुणा भी जगाता है। नई पीढ़ी के ज्ञानार्जन और अभिप्रेरणा के लिए भी 'सबरंग' की अहमियत है और इसी में इसकी मूल्यवत्ता भी समाहित है। इस अनुपम प्रस्तुति हेतु शंकर दयाल जी को हार्दिक बधाई!

समीक्षा

# आसन्न अतीत के सुरक्षित पड़े अंधेरे में प्रवेश

डॉ. मधु संधु
प्रीत विहार, आर.एस. मिल, जी.टी. रोड, अमृतसर, पंजाब
मोबाइल–8427004610

साहित्य ने जब.जब चिकित्सकों, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को आकर्षित किया है, उन्होंने उसे शाश्वत ऊँचाइयों से ही जोड़ा है। मास्को मेडिकल कॉलेज से अपनी शिक्षा पूरी करने वाले एंटोन चेखव रूस के जाने.माने चिकित्सक होने के साथ.साथ विश्व प्रसिद्ध नाटककार और कथाकार रहे। कहते थे – चिकित्सा उनकी धर्म पत्नी है और साहित्य प्रेमिका। प्रवासी भारतीय माता.पिता की संतान अब्राहम वर्गीस मशहूर अमेरिकन चिकित्सक होने के साथ.साथ उपन्यासकार एवं संस्मरण लेखक भी हैं। मानते हैं कि चिकित्सा उनका पहला प्यार है और लेखन सीधे उसी से निकला है। ब्रिटेन के उपन्यासकार समरसेट मोघम ने चिकित्सक होते हुए भी कभी चिकित्सा का अभ्यास नहीं किया और पूर्णकालिक लेखक बन गए। वे नाटककार, उपन्यासकार और कहानीकार थे। हारवर्ड विश्वविद्यालय से एम.डी. करने वाले जॉन माइकल क्रिचटन नाटक, कहानियां, उपन्यास लिखने में रूचि रखते थे। 'द जुरैसिक पार्क' उनकी विश्व प्रसिद्ध रचना है। इन्फोसिस कंपनी की अध्यक्ष टाटा मोटर्स की पहली महिला इंजीनियर सुधा मूर्ति ने साहित्य को 32 पुस्तकें दी हैं। उपन्यास, कहानी, लघु कथा, यात्रा संस्मरण – सब पर लेखनी चलाई है। नौ उपन्यासों के रचयिता बेस्ट सेलर लेखक चेतन भगत ने दिल्ली प्रौद्योगिकी संस्थान से मैकेनिकल इंजीनियरिंग की थी। हिन्दी ब्लॉगिंग के आदि पुरुष रवि रतलामी टेक्नोक्रेट थे। हिन्दी पठन और कविता, ग़ज़ल, व्यंग्य, स्तम्भ लेखन में उनकी पैठ थी।

नोएडा की पारुल सिंह हिन्दी जगत का एक उभरता हुआ हस्ताक्षर है। वे विज्ञान की छात्रा रही हैं। अल्मोड़ा विश्वविद्यालय से बॉटनी में एम.एस.सी. हैं। 'चाहने की आदत है' उनका कविता संग्रह है। 'ऐ वहशते दिल क्या करूँ' पारुल सिंह का संस्मरणात्मक उपन्यास है। कहानी का आरंभ जुलाई 2014 से किया गया है। जब 42 वर्षीय नायिका पहली बार अस्पताल में एडमिट हुई थी। भूमिका में कहती हैं... "मैंने अपनी हार्ट सर्जरी के अनुभवों पर यह किताब लिखनी शुरु की।... आजकल हम – मैं और मेरे पति ब्रिजवीर सिंह जी – अलग.अलग शहरों में हैं तो मैं दिन भर का लिखा उन्हें भेजती। – सर्जरी के समय हम दोनों साथ थे।" लिखने में, साफ़गोई में पति का हाथ प्रमुख रहा –

"जो बात कहते डरते हैं सब, तू वो बात लिख
इतनी अंधेरी थी न कभी पहले रात,
लिख जिनसे क़सीदे लिखे थे वो फेंक दे क़लम
फिर खूने दिल से सच्चे दिल की शिफ़ात लिख।"

जुलाई 2014 से नायिका पारुल सिंह तकलीफ में है। सांस की तकलीफ है, चक्कर आते हैं, सूजन है, बाल गिरते हैं, बेहोशी सा भी कुछ है। डा. इसे पैनिक अटैक कह स्ट्रेस और डिप्रेशन की दवाई देते रहते हैं, खुश रहने के लिए कहते हैं और रोग बढ़ता जाता है। सितंबर 2017 की इकोकार्डियोग्राफी बताती है कि दिल का एक वॉल्व बुरी तरह लीक कर रहा है और सर्जन ही बताएगा कि ओपन हार्ट सर्जरी करके इस वॉल्व की मरम्मत करनी है या इसे बदलना है। सर्जरी के लिए वह नेशनल हार्ट इंस्टीट्यूट, दिल्ली में दाखिल होती है। पता चलता है कि देर हो जाने के कारण वॉल्व रिपेयर का ऑप्शन नहीं रहा। अब एनिमल टिशू से बना मैकेनिकल वॉल्व लगेगा।

पन्द्रह परिच्छेदों का यह संस्मरणात्मक उपन्यास रोगी के जीवट की, साहस की कहानी है। स्मृतियों से आच्छन्न पूर्वदीप्ति शैली ने, गीत.ग़ज़ल.शेर ने, अतीत के रोचक प्रसंगों ने, परामनोविज्ञान की अलौकिक अनुभूतियों ने दु:ख की इस गाथा में साहित्य रस का सानुपातिक मिश्रण कर दिया है। 'जिंदगी के युद्ध की रूमानी कहानी' में पंकज सुबीर लिखते हैं –

"यह किताब लड़ना नहीं सिखाती, बल्कि आनंद के साथ लड़ना सिखाती है।... जो कुछ हो रहा है, उस पर यदि आपका वश नहीं है। दु:ख अगर इस कहानी को पढ़ ले तो स्वयं हैरत में पड़ जाये कि मेरी कहानी में मुझे ही नगण्य कर देने वाला कौन लेखक है।"

यह छह.सात घंटे की ओपेन.हार्ट.सर्जरी है। बाद में ढेरों मशीनों, ऑक्सीजन मास्क, कई तरह के दर्द, जागते रहने, लंबी सांस लेने के आदेश हैं। रोगी एक.एक घूंट पानी के लिए तड़पता है और जब नारियल पानी मिलता है, तो लगता है मानो ब्रह्मभोज मिल गया। हृदय की शल्य चिकित्सा के साथ मृत्युभय का वह पक्ष जुड़ा है, जो व्यक्ति के अपनों के प्रति मोह को पहले ही समाप्त कर देता है। यह आई.सी.क्यू. है। सब व्यस्त हैं – मरीज कराहने में और नर्स, डाक्टर तीमारदारी में। अनेक डाक्टरों का जिक्र है – कार्डियक सर्जन डा. विकास अग्रवाल, सहायक डा. अमिता यादव, अनेस्थेटिस्ट डा. रचिता धवन, डॉक्टर गुलिस्ताँ, फिजिओथिरेपिस्ट। नर्स संगमा, कृष्णा, मेल नर्स, कैंटीन के लोग भी हैं। माँ, पापा, पति बी.वी. और मित्रगण हैं। सुदेश जी, मुरादाबाद का चौकी इंचार्ज धोरासिंह जैसे अन्य रोगी हैं। दवाइयों के साइड इफेक्ट्स, एनेस्थीसिया, दर्द निवारक दवाएं, मसल्स रिलेक्सेट्स आदि मिलकर अनेक परेशानियाँ उत्पन्न कर रहे हैं।

नेशनल हार्ट इंस्टीट्यूट नई दिल्ली की आई.सी.क्यू. में पड़ी नायिका पारुल का संवेदनशील मन वस्तु बनने से विद्रोह कर रहा है। उसके सर्जन डॉक्टर विकास हैंडसम हैं, आत्मविश्वास और गर्व से भरपूर हैं। दृष्टि सपाट, सर्जरी पर पूरा फोकस, रोगी के बारे में सब कुछ कंठस्थ, सिनसियर, आर्गनाइज्ड, लंबे.ऊँचे, रोबोटिक। उनका दौड़ता हुआ सा हृदयहीन, मैकेनिकल काफिला दनदनाता हुआ आता है। उनके बोलने का लहजा सपाट सा है। सर्जन और रोगी का अद्भुत रिश्ता है – वह डा. के लिए मात्र एक रोगी है और डा. रोगी के लिए जीवनदाता, भगवान, खेवनहार है। पारुल उनमें अपनापन ढूंढती है। लेकिन डा. को मरीज का उत्तर या बात सुनने की आदत ही नहीं। मरीज सिर्फ मरीज है, उसका कोई रुतबा नहीं, वह शारीरिक ही नहीं मानसिक रूप में भी अनेक चुनौतियों से नित्य जूझता है। क्या मरीज का कोई आत्म सम्मान नहीं होता? मृत्यु और जीवन के बीच झूल रही पारुल अपने डा. के गले लगना चाहती है। लेकिन डा. रोबोट सा व्यक्तित्व लिए है। समझिए कि मरीज का भी वस्तुकरण हो चुका है। उसे वार्ड से आई.सी.यू. अथवा आई.सी.यू. से वार्ड में भेजा नहीं जाता, हैंड ओवर किया जाता है। उसे आई.सी.यू. एक सोलो ट्रिप सा प्रवास सा लगता है। भले ही मानसिक तौर पर पूरा परिवार आपके साथ हो, लेकिन शारीरिक स्तर पर आप अकेले ही होते हैं। ऐसे में फिजियोथिरेपिस्ट का संवेदनशील व्यवहार और पति का स्नेह तथा अपनापन पारुल के अंदर आत्मविश्वास उत्पन्न करते हैं। मृतप्राय: जीवट में संजीवनी भरते हैं। डा. अमिता तो हर रोगी के दर्द से तादात्म्य की क्षमता लिए है। बेटियों की स्मृति क्षमताबोध देती है। सर्जन के रूखे और अपमानजनक व्यवहार के बाद पारुल को पति बी.वी. का आना ऐसा लगता है जैसे किसी मेले में अकेले खोये हुए व्यक्ति को कोई अपना मिल गया हो, जैसे चारों ओर कोई खुशबू फैल गई हो।

फ्लैश बैक, पुरानी स्मृतियां, अतीत की यात्रा पठनीयता में रोचकता भरते हैं। आई.सी.यू. में प्यास की तीव्रता पारुल को दशकों पूर्व की उस यात्रा पर ले जाती है, जब दिल्ली से हल्द्वानी जाते लैंड स्लाइड के कारण बस रुकी थी। वह नाशपातियाँ तोड़ कर लाई थी, बहुत प्यास लगी थी और बोतल में पानी देख वह प्रसन्न भी हुई थी और विस्मित भी। ऑपरेशन थिएटर में पारुल बड़ी बेटी की डिलीवरी के समय यानी तेईस की उम्र में सात माह के बाद हुए सिजेरियन की स्मृतियों में चक्कर लगाने लगती है। जब बार.बार लंबी सांस लेने के लिए कहा जाता है तो वह अपने बचपन में पहुँच जाती है। जब वह और मनोज साँसें रोक कर साँसें बचाने का जुगाड़ किया करते थे। अपने शरीर की बनावट पर यह सुनने पर कि ब्रेस्ट भारी होने के कारण फेफड़े ठीक से काम नहीं कर रहे, जख्म

भर नहीं रहा, वह आहत होती है, और वयःसंधि काल की स्कूली स्मृतियाँ ताजा हो आती हैं, तब भी वक्ष के इसी भारीपन ने उसे वर्षों परेशानी में डाले रखा था। नींद में अस्पताल की सीढ़ियाँ पारुल को दशकों पूर्व के कॉलेज की सीढ़ियों तक ले जाती हैं, जब वह मेरठ के रघुनाथ कॉलेज में बी.एस.सी. की मस्त किशोर छात्रा थी। लिखती हैं –

"मेहरबाँ हो के बुला लो मुझे चाहे जिस वक्त
मैं गया वक्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ।"

उपन्यास में कुल 15 परिच्छेद हैं और हर परिच्छेद का आरंभ एक शेर से होता है –

"हजारों ख्वाइशें ऐसी कि हर ख्वाइश पर दम निकले
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।"

गहन असहनीय दर्द में भी पारुल मन ही मन गीत गाती रहती है, क्योंकि गानों में डूबा होना दर्द में डूबने से ज्यादा अच्छा है। दर्द से जूझने के लिए वह म्यूजिक थेरेपी का प्रयोग करती है। रेडियो से साहिर के गीतों की आवाजें उसे बाधती हैं।

मरीज से डा./नर्स का रिश्ता एक विश्वास का होता है। जैसे पारुल डा. विकास में अपनापन ढूंढती है, वैसे ही रोगी धोरासिंह पर एक नर्स का 'हुन्न बोलो' जादू कर रहा है – "जादू था जो आदिकाल से किसी भी स्त्री के समक्ष पुरुष को बेचारा, निरुपाय बनाता आया है।... पुरुष स्वभावतः स्त्री के किसी भी रूप के समक्ष आशा भरी निगाहों से ही देखता है। उसे लगता है उसी के पास हल है उसकी सारी समस्याओं का। भरण.पोषण की दुरूह कंटीली धूप सी जिम्मेदारियों से व्याकुल वह थोड़ी नर्म छांव सदा अपने जीवन में वह स्त्रियों में ही तलाशता व पाता है। पुरुष स्वभाव अपनी भावनाओं को प्रकट न कर पाने के लिए शापित है, ऐसे में स्त्री चाहे किसी भी रिश्ते में हो, जब उसका अनकहा समझती है तो उसके समक्ष आँख मूँद आराम पाता है।"

उपन्यास में परामनोविज्ञान के अनेक प्रसंग मिलते हैं। परिच्छेद तीन में सर्जरी के लिए पारुल को बेसुध किया जा चुका है। उसका दिल और फेफड़े बंद पड़े हैं। उन्हें 'पी.सी.बी.' तकनीक यानी मशीनों से चालू रखा हुआ है। ऐसे में एक परामनोवैज्ञानिक शक्ति पारुल की आत्मा को अस्पताल के प्रथम तल पर बैठे परिजनों के पास ले आती है। वह पति की अंतरचेतना से सामंजस्य स्थापित कर उसे पढ़ने लगती है। परिच्छेद 6 में आया परामनोविज्ञान का प्रसंग मृत्यु भय से जुड़ा है – "अचानक मुझे ऐसा लगा कि मुझसे यह धरती छूट रही है, अब मैं इस ब्रह्मांड पर वापस नहीं आऊँगी, पता नहीं कहाँ चली जाऊँगी। – नीचे छूटती जाती धरती से दूर होते जाना देख रही थी।"

परिच्छेद 12 में बेचैन पारूल हठधर्मी डा. विकास के आदेश से परेशान हो माँ को याद करती है और तभी डा. का उसके हक में निर्णय आ जाता है और उसे लगता है माँ ने ही डा. की अंतश्चेतना को प्रभावित कर यह निर्णय करवाया है। पारुल का विश्वास है कि "माँ के साथ हम टेलीपैथी से जुड़े होते हैं।"

पारुल सिंह में स्त्री सुलभ नजाकत और सौंदर्य बोध है। वह सर्जरी के लिए अस्पताल भी आती है तो जीन्स, पुलओवर और पूरे मेकअप के साथ। सर्जरी के समय भी उसे शरीर पर रह जाने वाले निशान की चिंता है। शरीर उसका प्लम्पी सा है। लेकिन वह स्मार्ट है। पति को भी वेशभूषा से स्मार्ट बनाए रखती है और उसे डा. भी स्मार्ट ही चाहिए। नाजुक इतनी थी कि चीर.फाड़ के भय से वह शादी के बाद बच्चों को जन्म ही नहीं देना चाहती थी और नियति देखो कि हृदय पर छुरियां चलवाने के लिए अभिशप्त है। अस्पताल में भी देखती है कि डा. नीले रंग का ब्लेजर या कोट, सफेद शर्ट, नीली टाई पहनते हैं। नर्सें हरे रंग की पट्टियों वाले स्क्रब, कैनटीन का स्टाफ सफेद टोपी, सफेद शर्ट, काली जैकेट पहनता है।

कहते हैं कि भगवान ने स्त्री को बड़ी फुरसत से बनाया है, लेकिन उसके जीवन में फुर्सत के पल लिखना ही भूल गया है। कामकाजी स्त्री को तो मशीन ही मान लो। स्त्री भले ही डा. हो, उसे घर जाकर भी, रविवार को भी काम करना होता है। डा. रचिता को अस्पताल का काम थकान नहीं देता, घर का काम – सफाई, कपड़े, खाना – जैसे थैंकलेस काम थका देते हैं और पति आम पतियों की तरह न बाहर से काम करवाने देते हैं, न ढंग की मशीन लेने देते हैं और न स्वयं कोई मदद करवाते हैं। नायिका की कॉलेज हॉस्टल की सबसे मेधावी सहपाठिन अनीता की भी बात करती है। पढ़ाई छूटी, सात बहनों के भाई से शादी हुई और वह हाउस वाइफ बनकर रह गई।

पल्मोनोलॉजिस्ट, एनेस्थेटिस्ट, एंजियोग्राफी, कार्डियोपलमोनरी बाईपास, परफ्यूजनिस्ट, लंग्स का एसपिरेशन, माइट्रल वॉल्व, मिनिमली इनवेसिव सर्जरी, इन्सिजन, एस्टर्नम, रूमेटिक हार्ट डिजीज, माइल्ड ट्रायकस्पिड, कैल्सिफिकेशन, कैथेटर जैसे अनेकानेक मेडिकल के शब्द उपन्यास में समाहित हैं।

उपन्यास में आई सूत्रात्मकता लेखिका के प्रौढ़ चिंतन का परिणाम है। जैसे –

1. बात लफ्जों के बिना कही जाती है, वो ही सबसे ज्यादा महत्व की होती है। – वो इस दुनिया की सबसे खूबसूरत बात होती है।
2. दो तरह की मुस्कुराहटें होती हैं अमूमन। एक में तो चेहरा ही मुस्कुराता है केवल, और दूसरी मुस्कुराहट वो होती है जिसमें चेहरे के साथ आँखें भी मुस्कुराती हैं।
3. बीमारी के साथ मर जाना बीमारी को खत्म करने का छोटा और आसान रास्ता था।
4. जितनी अपनी हिम्मत बढ़ाते हैं ऊपर वाला उतने ही बड़े इम्तिहान लेने लगता है।
5. कितना अभिमानी होता है इंसान, सामने मौत खड़ी हो तो भी उसे अपने अहं की रखवाली जरूरी लगती है।

मम्मी के कुछ विश्वास.अंधविश्वास भी हैं। जैसे नाम लेने से लोग पास और पास आ जाते हैं। मरे हुए लोग सिरहाने आ बैठते हैं तो मौत आती है। पौराणिक प्रतीक भी आए हैं, जैसे.कामधेनु के सहारे वैतरनी पार करने की जुगत।

'ऐ वहशते दिल क्या करूँ' उपन्यास स्मृति व्यापार नहीं है, जो तन. मन पर गुजारा उस भोगे गए दर्द का रचनात्मक, साहित्यिक ब्योरा है। कहानी प्रेम.मुहब्बत की नहीं है, सामाजिक.सांस्कृतिक, प्रशासनिक, राजनैतिक विघटन ही नहीं है, यह जीवन का आम, लेकिन अछूता पक्ष है।

उपन्यास कुछ ईमानदार प्रश्न छोड़ता है कि डा. की सहृदयता रोगी का आधा दर्द हर लेती है। रोगी का वस्तुकरण उसे स्वस्थ होने नहीं देता। कामकाजी स्त्री को पति का सहयोग अवश्य मिलना चाहिए। चूल्हा.चौका स्त्री की प्रतिभा को राख कर देता है। उपन्यास अनास्था से आस्था, नकारात्मकता से सकारात्मकता, मृत्युबोध से जीवन बोध की यात्रा है। लेखिका ने अद्‌भुत कथाकौशल से ओपन हार्ट सर्जरी वाले रोगी की वेदनाओं, मनःस्थितियों का लेखा.जोखा, अपनी लेखनी में पिरोया है। यहाँ अस्पताल के इंटेन्सिव केयर सेंटर के मेडिकल स्टाफ और मरीजों का मुँह बोलते चित्र हैं, जिन्हें डॉक्टरों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

यह संस्मरणात्मक उपन्यास है। पारुल सिंह ने आसन्न अतीत के सुरक्षित पड़े अंधेरे में प्रवेश किया है। जिये हुए अतीत को पुनः जिया है। हिन्दी में संस्मरणात्मक उपन्यासों की शुरुआत निराला के 'कुल्लीभाट' से मानी गई है। रामदेव धुरंधर का 'अपने रास्ते का मुसाफिर' आत्मसंस्मरणात्मक उपन्यास है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' भी आत्मकथात्मक है। मृदुला गर्ग के 'ये नायाब औरतें' में यादों के पेंडोरा बॉक्स से निकाले गए नायाब किस्से हैं।

उपन्यास का अन्तिम परिच्छेद इसके संस्मरणात्मक रूप की एक बार फिर पुष्टि करता है। यहाँ पुस्तक मेला है। पंकज सुबीर, नीरज गोस्वामी, शहरयार, सन्नी जैसे साहित्यकारों और साहित्यप्रेमियों की चर्चा है।

ऐ वहशते.दिल क्या करूँ (संस्मरणात्मक उपन्यास), पारुल सिंह, शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, सीहोर, म.प्र.–466001

समीक्षा

# जुझारू और जीवंत व्यक्ति की खूबसूरत दास्तां : कुछ आँसू कुछ मुस्कानें

सुमन सिंह चन्देल
मुज़फ्फरनगर, उत्तर प्रदेश

जुझारू और जीवंत व्यक्ति की खूबसूरत दास्तां : कुछ आँसू कुछ मुस्कानें

आत्मकथा लिखना बेहद जोख़िम भरा काम है। पंजाबी लेखिका अजीत कौर का कथन है – "आत्मकथा लिखना अंगारों पर चलने जैसा है।" बावजूद इसके लेखक अपनी निजी दुनिया के द्वार, उसकी तमाम खिड़कियाँ पाठकों के लिए खोल देते हैं। इन खिड़कियों को खोलने के पीछे उनकी कोई मंशा तो होती ही होगी? शायद वे अपने जिए जीवन में कुछ तो इतना महत्वपूर्ण मानते होंगे कि अपने बारे में बताकर देश.दुनिया को कुछ चेताना, कुछ सीख देना चाहते हों, या मात्र सनसनी पैदा करना उनका उद्देश्य होता है? दोनों ही बातें अपनी.अपनी जगह सही प्रतीत होती हैं। ये भी सच है कि विवाद या सनसनी पैदा करने के लिए भी आत्मकथाएं हमेशा से लिखी जाती और छपती रही हैं। उनका भी उद्देश्य भले ही विवाद और सनसनी रहा हो लेकिन लेखक की निजी जिंदगी की मुकम्मल तस्वीर तो नजर आती ही है। पाठक लेखन के संघर्षों, विफलताओं और उपलब्धियों से रूबरू होता है, बाजदफा लेखक के बारे में पहले से बनी राय भी बदल जाती है।

लेखक की कोई एक कृति उसे बदनामी दिलाती है तो किसी कृति विशेष से वह नेकनामी भी बटोर लेता है। ये बदनामियां मंटो के हिस्से में आई और इस्मत चुग़ताई को भी इसने नहीं बख्शा। 'चितकोबरा' की लेखिका के रूप में चर्चित वरिष्ठ लेखिका मृदुला गर्ग ने भी बहुत बदनामियाँ कमाई। साहिर के प्रेम में पगी अमृता ने भी बदनामी और नेकनामी का स्वाद खूब चखा। ऐसा ही एक लेखक है – "सन्दीप तोमर" जिसने अपने उपन्यास 'थ्री गर्लफ्रेंड्स' से आपबीती का तमगा पाया तो "एस फॉर सिं" जैसे उपन्यास की रचना करके बोल्ड लेखन का तमगा हासिल किया, फिलहाल जिक्र करना चाहूँगी, हाल ही में प्रकाशित उनकी 'कुछ आँसू कुछ मुस्कानें' द्धयात्रा. अन्तर्यात्रा का अनुपम शब्दांकनऋ का। वैसे इस यात्रा.अन्तर्यात्रा का अनुपम शब्दांकन शब्द का सुझाव भूमिकाकार का है जो किताब के फ्लेवर के एकदम अनुरूप प्रतीत होता है। मुझ जैसी पाठिका से पूछा जाए तो मैं इसे संस्मरणात्मक कोलाज कहना अधिक पसंद करूँगी। पारंपरिक आत्मकथाओं की तरह इसमें कथा वृत्तांत लेखक के जन्म से क्रमानुसार आगे नहीं बढ़ता, इसमें तिथियों के क्रमवार ब्योरे नहीं हैं। परिवार के किसी एक सूत्र को पकड़कर लेखक अपनी कथा सुनाने का उपक्रम नहीं करता, यहाँ सिलसिलेवार जीवन गाथा लिखने के परम्परागत तरीके को ध्वस्त करते हुए लेखक जब जिस बात की महत्ता को जरूरी समझता है, वह पूरा का पूरा वाकया स्वतः प्रस्तुत हो जाता है। किसी एक सिरे को लेकर लेखक उसमें गांठ लगाकर तुरंत ही दूसरे सिरे को हाथ में पकड़ लेता है और सहज ही उन सिरों को आपस में जोड़ ऐसा कोलाज बनाता है कि हमें लगने लगता है जो कुछ पल पहले अटपटा सा था, वह ही तो आवश्यक था, स्मृतियों की जब जिस डोर की जरुरत है लेखक उसे पकड़कर रंग.बिरंगी कालीन बिछा देता है। उसकी गांठें पाठक को आँसुओं का अहसास कराती हैं तो मुलामियत से पाठक आनंदित हो मुस्कुरा उठता है। इस तरह विविध जीवन स्मृतियों से तैयार की गयी कालीन में पीड़ा के पैबंद भी साफ नजर आते हैं तो मन को सुकून देने वाले पल भी आते हैं। पाठक लेखक और उसके जीवन में घटने वाले प्रसंगों पर पूरे मन और आग्रह से कभी हँसता है तो कभी रोता है। कभी सुखद स्मृतियों की चुलबुली यादें उसे गुदगुदाती हैं तो कहीं दुःख और अवसाद की घाटी में वह खुद को भी डूबा हुआ पाता है। इस लेखक की यह बड़ी खूबी है कि वह अपनी कथा के प्रवाह में पाठकों को इस तरह बहा ले जाता है कि पाठक सब कुछ भूलकर उसके साथ बहता चला जाए, यानी लेखक एक कठपुतली का खेल दिखाने वाले मदारी की तरह हर डोर को खुद के इशारे से चलाते हुए जब मन होता है पाठक के आँसू पोंछने लगता है। निःसंदेह संदीप की किस्सागोई में पाठक इतना रम.बस जाता है कि चाहकर भी पुस्तक रखने की तहमत वह नहीं उठा पाता। पाठक इस स्मृति कथा में शामिल होकर, उनकी उंगली पकड़कर कोलंबस हुआ जाता है।

स्मृति कथा की एक खूबी यह भी है कि उसमें सिर्फ संदीप नहीं है बल्कि वह थोड़ा कम ही है लेकिन इसमें संदीप से जुड़े वो तमाम लोग हैं जिनसे उसका या उससे जिनका भी जीवन किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ है। यहाँ उनके उपन्यास 'थ्री गर्ल्सफ्रेंड्स की नायिकाओं की उपस्थिति भी है। संदीप से जुड़े घर.परिवार, उसकी दुनिया के लोग हैं और उसमें स्त्रियाँ भी हैं, जो कभी प्रेमिका, कभी बहन तो कभी माँ के रूप में उपस्थित हैं तो कभी एक निर्मल मन की सखी के रूप में है। स्त्रीमन या सख्य भाव वाले पुरुष भी अनायास ही इस स्मृति यात्रा में शामिल हो गये हैं। खुद लेखक अपनी इस कथा के विषय में कहता है –

"ताकि लिखा जा सके
वो लम्हा, जब समझ आये
मेरे 'मैं' होने के असल मायने,
और मेरी पीड़ा बन जाए
पूरे ब्रह्माण्ड की गाथा
उसी गाथा के साथ हूँ
मैं को 'मैं' होने के लम्हों की मानिंद।"

आत्मकथात्मक या संस्मरणात्मक गाथाएं अक्सर बहुत नीरस होती हैं, पाठक उसकी बोझिलता से घबरा उठता है। यहाँ लेखक ने इस बात का बड़ा ख्याल रखा है कि पाठक स्वयं से कोई राय न बनाये, उसने बड़े सलीके से गंभीर से गंभीर प्रसंग में भी कुछ ऐसे रोचक प्रसंग जोड़ दिए हैं कि पाठक मुस्कुरा देता है और पुस्तक के पन्नों से गुजरते हुए कब आखिरी सफे तक पहुँच जाता है, यह उसे पता ही नहीं चलता।

सुभाष नीरव की लिखी भूमिका को पढ़कर ही इस स्मृति गाथा के फ्लेवर का अंदाजा लग जाता है। बानगी देखिए – "संदीप तोमर की यह यात्रा.अंतर्यात्रा भावात्मक और सांसारिक जीवन के उन पहलुओं पर भरपूर प्रकाश डालती है जो उनकी रचना.यात्रा में निर्णायक रहे। तमाम विरोधाभासों के बीच से यह लेखक अपनी जिजीविषा, अपनी सादगी,

आदमियत और रचना.संकल्प को नहीं टूटने देता। जीवन.स्थितियों के साथ.साथ वह अपने दौर की कई साहित्यिक.सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर भी रोशनी डालता है और लेखन की रचनात्मक बेकली और तत्कालीन लेखकों की ऊँचाइयों.नीचाइयों से भी परिचित कराता है। इसके साथ.साथ वह परिवेशजन्य उन स्थितियों को भी पाठक के सामने रखता है जिन्होंने उनकी संवेदना को झकझोरा।"

फिर लेखक भी कहता है "भरपूर परिवार के होते भी, मैं इस पहचान वालों की दुनिया में अजनबी बना रहा। कहने को मेरे आस.पास सब अपने थे लेकिन शायद साथ कोई भी न था, ये सफर अकेले ही तय करना होता है।

अलग.अलग उप शीर्षकों में सिमटी इस कथा का प्रारंभ 'मेरे सरोकार मेरे अल्फ़ाज़' से होता है। वे अपने परिवार से अपनी आपबीती का आगाज़ करते हैं। फिर उसमें बहुत से दिलचस्प किस्से जुड़ते चले जाते हैं। वे लिखते हैं – जब मैं पैदा हुआ, तो कच्चा घर टूटकर पक्का बन चुका था, बिजली का कनेक्शन भी आ गया था। मैं मुश्किल से एक बरस का था, घुटनों के बल चलना छोड़कर, चारपाई पकड़ तेजी से दौड़ता था। शायद ये पहले साल के साथ ही चलने का आखिरी साल भी था, जीवन हमेशा के लिए ठहर सा गया था। माँ ने घर पर ही रखकर हाथ में कलम थमाई, जो आज तक हाथ में है, छूटती ही नहीं।"

वह "पिता, माँ, रिश्तेदारों के अलावा बहनों.भाइयों और उनसे जुड़े मददगार मित्रों, शिक्षकों, सहपाठियों आदि को भी समेटता चलता है।

बात अगर साफगोई और उसके साथ ही बेबाकी की करें तो उसपर यह अफ़साना पूरी तरह से खरा उतरता है। आत्मकथा का लेखक यह गुर जानता है कि कितना छिपाना है और कितना बताना है। सन्दीप से इस बात की पड़ताल की जा सकती है कि उन्होंने कितना छिपाया है लेकिन बात जब बेबाकी से लिखने की आती है तो वह अपने माता.पिता आदि के बारे में भी बड़ी तटस्थता लेकिन आत्मीयता के साथ लिखते हैं। बानगी देखिये – "पिताजी ने बहुत गुस्सा किया, एक छोटे से खटोले पर मुझे लगभग पटकते हुए पिताजी ने कहा – '.....'। उस वक्त पता नहीं चला कि ये कौन सी भाषा थी और ये कौन सा गुस्सा था? एक बच्चे के प्लास्टर के भीगने की चिंता दूसरे बच्चे के अस्तित्व, उसके बालमन को आहत करने का सबब कैसे बनी – आज तक समझ नहीं पाया। आज जब ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ तब महसूस हो रहा है मानो सब कुछ चलचित्र की तरह आँखों के सामने चल रहा था, तब मेरी उम्र 6 या 7 साल रही होगी...।

ये मात्र एक घटना है जब घर से ही मन आहत हुआ... कितनी ही बार उस माँ के मुँह से भी ऐसे शब्द सुनता – जिसने मेरे इलाज में अपनी उम्र और जवानी का एक बड़ा हिस्सा फूँक दिया, एक तरफ उनका त्याग, समर्पण, और पानी की तरह अपने इलाज पर पैसा बहाते देखता दूसरी तरफ 'रु:रु:रु:रु' जैसे शब्द सुनता तो समझ नहीं पाता कि क्या सही है और क्या गलत है?"

संदीप अपने पेरेंट्स की खूबियों के साथ ही खामियों का जिक्र भी करते हैं। उनकी नजरों में न तो वे अतिमानव हैं और न ही खलनायक या कोई मुजरिम। पेरेंट्स सबके ही अति.साधारण होते हैं, बस संघर्ष के तरीके उन्हें समाज में विशिष्ट बनाते हैं।

जब कोई लेखक अपनी आत्मकथा लिखता है तो प्राय: वह अपने समकालीन कथाकारों पर भी लिखता है और वह लिखा हुआ कभी.कभी विवादास्पद भी हो जाता है। मृदुला जी ने भी अपने कुछ समकालीन हिन्दी और हिन्दीतर लेखकों को अपने किस्सों में शामिल किया है, लेकिन यहाँ वह सब बड़ी उदारता और शालीनता के साथ आया है। वह उनके व्यक्तित्व के सकारात्मक पक्षों पर बात करते हुए उनके विरोधाभासों पर मुस्कुरा कर निकल जाते हैं। अपने लेखन में हुए पदार्पण पर वे लिखते हैं – "साहित्य में पदार्पण जिसकी मार्फ़त हुआ, वह अब साहित्य की दुनिया में न के बराबर थी, उसके विवाहोपरांत मिलना.जुलना तो छूट ही गया था लेकिन छोटी.बड़ी पत्र.पत्रिकाओं में उसकी अनुपस्थिति भी खलने लगी थी।" स्पष्ट है कि वे हर किसी के योगदान को भूलते नहीं हैं। वे कहते हैं – "ये जो रूहानी रिश्ते होते हैं इन्हें कोई नाम कैसे दे सकता है, कौन साहिर हैं, कौन अमृता और कौन इमरोज? अपनी.अपनी जगह हर कोई साहिर है, हर कोई अमृता लेकिन इमरोज तो एक है।... वो एक रूह दूसरी रूह में अमृता को खोजने लगे तो उसे खुद इमरोज हो जाना होगा, और इमरोज हो जाना यानि ये भूल जाना कि यहाँ लेने का भाव नहीं, उद्देश्य सिर्फ देना हो, करीब होने और दूर होने के मायने ही शून्य हो जाएँ और वह रूह दूसरी रूह से कहे –

"अच्छा चलो तुम अमृता हो जाओ
और मैं बना रहूँ अदना सा इमरोज।

बचपन के गमज़दा दिनों का अवसाद पाठकों को भी दु:ख और तकलीफ से भर देता है लेकिन लेखक का उनसे उबर कैरियर पर फोकस करना, प्रेम में टूटने से उबरना, विकलांगता को अपने जीवन की बाधा न बनने देना, राहत के सुखद झोंके की तरह लगता है।

कुछ रिश्ते खून के होते हैं, कुछ कागज़ के तो कुछ मन के। मन और प्रेम का रिश्ता सबसे ज्यादा मजबूत होता है, पचास से भी कम उम्र के जीवन में लेखक के पास खून के रिश्तों के अलावा ऐसे रिश्तों की कमी नहीं है जिनके बल पर वे अपने दु:ख.अवसाद और परेशानियों के गह्वर से बाहर निकल आते हैं।

फिर इन सबके बीच में 'एक लेखक की मौत' कथा भी है जो विचलित करती है लेकिन साहस भी देती है कि हारना या मरना कोई विकल्प नहीं है। अपनी लड़ाई हर हाल में जारी रखनी चाहिए।

एक सजग और संवेदनशील लेखक द्वारा लिखी गई इस बेमिसाल कथा को पढ़कर अच्छा लगा, बस एक सवाल मन में उठता रहा कि प्रेम पर लिखने वाले इस लेखक ने बहुत कुछ लिखते हुए क्यों अपनी निजी प्रेम कथा को कम विस्तार दिया है? 'एक अपाहिज की डायरी' में उनके पारिवारिक और सामाजिक संघर्ष की बहुत सी झलकियाँ मिली थीं, जिन्हें इस रचना में बहुत कम स्थान मिला है हालांकि उसमें कुछ नये आयाम और अध्याय भी जुड़े हैं। साहित्य के एक चर्चित युवा लेखक की आपबीती को पढ़ना स्वयं को समृद्ध करना है।

कुछ आँसू कुछ मुस्कानें (आत्मकथा), सन्दीप तोमर, इंडिया नेटबुक

समीक्षा

# 'कपास' (कहानी संग्रह)

सोनल मंजू श्री ओमर
श्रीजी अपार्टमेंट, शांति नगर
रैयाधार के पास, रामापीर चौकड़ी, राजकोट, गुजरात
मोबाइल–8780039826

हाल ही में लेखक डॉ. कुबेर दत्त कौशिक जी का 10 कहानियों का संग्रह 'कपास' पढ़ने को मिला। इनके अभी तक लगभग एक उपन्यास (दस्तखत) व एक दर्जन कहानी संग्रह (झोपड़ी, कुल्हड़, कपास, शाख शाख जल गई, अफसाना, रोशनाई, चरणामृत, खंडहर, कहानी कहानी केवल कहानी, जज़्बात, पतझड़, परछाइयां आदि) प्रकाशित हो चुके हैं। 'कपास' किताब की सभी कहानियों की पृष्ठभूमि आंचलिक परिवेश में गढ़ी गई है। डॉ. कुबेर दत्त कौशिक की कहानियाँ आज के शहरीकरण के युग में विशुद्ध गाँव के आँचल में पलती, किलकती, बिलखती, इठलाती अपने परिवेश की गाथा कहती हुई दिखायी पड़ती हैं।

इस संग्रह की पहली ही कहानी का नाम 'कपास' है, जोकि संभवतः किताब के नामकरण का भी आधार बनी। इसकी शुरुआत एक यूनिवर्सिटी के हॉस्टल से होती है, जिसमें ग्रामीण परिवेश का एक लड़का चंद्र प्रकाश तिवारी रहता है। उसकी एक महिला मित्र है विलियम रॉबर्ट। विलियम चंद्र प्रकाश के कपड़ों को देखती थी और उनके विषय में प्रश्न पूछा करती थी। ऐसे ही एक बार वो उससे 'खेस' के विषय में पूछती है तब चंद्र प्रकाश उसे बताता है, "खेस मोटे सूत का वस्त्र होता है, जिसे प्रायः गाँव के लोग सर्दी के मौसम में ओढ़ते हैं।" विलियम उससे सूत इत्यादि के विषय में भी पूछती है। सम्पूर्ण कहानी कपास की फसल अर्थात् बाड़ी बोने से लेकर खेस तैयार होने तक की कथा है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने एक किसान परिवार के जीवन के संघर्ष को दिखलाया है कि किस प्रकार किसान एक एक फसल को अपना खून पसीना देकर, सर्दी गर्मी बरसात सभी मौसमों में अपनी संतानों से भी कहीं ज्यादा ध्यान देकर सींचते पालते हैं।

'पश्चाताप' कहानी सही गलत के द्वंद्व के मध्य फँसे पश्चाताप की कहानी है। इसमें एक पैंसठ वर्षीय मरीज तीन साल से फोलिंज नामक बीमारी से पीड़ित है, जिससे उसका पूरा शरीर निष्क्रिय हो चुका है और अब उसका कोई इलाज नहीं है। उसके तीमारदारों ने उसका कई जगहों पर भरपूर इलाज कराया और अंततः उसे एक नर्सिंग होम में भर्ती कराकर छोड़ देते हैं। इस नर्सिंग होम को डा. मनोज मिश्रा और उनके सहायक श्रीकांत देखते हैं। श्रीकांत उस मरीज को पीड़ा में मृत्यु का इंतजार करते देखकर दुःखी होते हैं। वे चाहते हैं कि उस मरीज को मुक्ति दे दी जाए, पर डा. मनोज मिश्रा इस सोच को हत्या और पाप की संज्ञा देते हैं। इस द्वंद्व की स्थिति में श्रीकांत डा. मनोज को एक लड़के के पश्चाताप की कहानी सुनाते हैं। श्रीकांत का मानना है कि, "पश्चाताप एक ऐसी औषधि है, ऐसा उपाय है जो पाप के रोगों का समापन कर देती है।" इसीलिए अंततः वो उस मरीज को उसकी पीड़ा से मुक्त कर देते हैं। इस कहानी द्वारा लेखक के दार्शनिक दृष्टिकोण का भान होता है। वो पाठकों पर ही इस बात का फैसला छोड़ देते हैं कि श्रीकांत ने सही किया या गलत।

'परछाइयाँ' भूले बिछड़े साथी से बरसों बाद मिलने की कहानी है। इसमें सत्तर वर्ष की 'दुर्गी' अपना भरा पूरा परिवार होने पर भी नितांत अकेली है। उसकी एक फकीर मातूराम से भेंट होती है। उसे पता चलता है कि मातूराम उसके ही मायके का रहने वाला है। वह अपने गाँव के आस पड़ोस, सभी परिवार, सदस्य इत्यादि के विषय में मातूराम से पूछती है। अंत में दुर्गी एक सुबोध नाम के व्यक्ति के विषय में पूछती है, ऐसे किसी व्यक्ति को जब मातूराम जानने से इंकार करता है तो दुर्गी उदास हो जाती है। कुछ माह पश्चात् मातूराम पुनः दुर्गी से मिलने आता है और उसे अपने साथ एक कॉलेज के समारोह में चलने का आग्रह करता है, जिसमें कवि सम्मेलन का आयोजन है। उस आयोजन में पहुँच कर दुर्गी को एहसास होता है कि उन कवियों में एक सुबोध भी है। बड़ी ही नाटकीयता के साथ दोनों एक दूसरे को पहचान लेते हैं और अंत में दुर्गी के मुख से बस इतना ही निकलता है, "लै देख ले सुबोध! मौत जैसी इंतज़ार की बेहिसाब लम्बी ज़िंदगी गुजारने के बाद आखिर आज तुझसे मुलाकात हो ही गई।"

'अर्थी' कहानी का मुख्य पात्र बिरजपाल, जो कि छीवर जाति का, अनपढ़ और मजदूर वर्ग का व्यक्ति है। वह इकलौता ऐसा व्यक्ति है जो अर्थी बांधने का कार्य करता है। इसीलिए हर जाति–वर्ग के लोग, उसके गाँव के साथ साथ आस पास के गाँव के लोग भी अर्थी बंधवाने के लिए उसी पर निर्भर रहते हैं। वह इस कार्य के लिए कोई मूल्य नहीं लेता क्योंकि उसका मानना है कि यह पुण्य का कार्य है। इस कार्य को करने में वह इतना समर्पित है कि अपने घर परिवार, अपनी रोजी रोटी के कार्यों को भी बाद में महत्व देता है। लेकिन उसकी इस अच्छाई के फलस्वरूप उसे कुछ हाथ नहीं लगता है। गाँव में डेंगू बुखार का प्रकोप होने से जब पहले उसकी माँ को, फिर उसकी पत्नी को और फिर बिरजपाल को डेंगू हो जाता है तब भी बिरजपाल अपने परिवार से पहले दूसरों की मदद करता है, लेकिन जब उसकी माँ और पत्नी का देहांत होता है तो कोई उसको पूछने तक नहीं आता। वह दोनों की अर्थी रेहड़े पर ले जाता है। बाद में उसकी खुद की मृत्यु डेंगू से सही समय पर इलाज न मिलने के कारण हो जाती है। अंत में कहानी इस प्रश्न के साथ खत्म होती है कि अर्थी बाँधने का कार्य तो कोई भी कर सकता है। आमतौर पर मृतक के परिवारजन ही यह काम करते हैं, इसके लिए किसी विशेष व्यक्ति पर निर्भर रहना क्यों आवश्यक है? क्या उस व्यक्ति के न होने पर अर्थी नहीं बँधेगी?

'मास्क' एक गाँव की कहानी है जहाँ की औरतें एकजुट होकर जत्थे में जंगल जाती है और वहाँ से अपनी गाय भैंसों के लिए चारा काट के लाती है। अचानक एक दिन लॉकडाउन लग जाता है और सभी को घर पर ही सीमित रहना पड़ता है। इन गाँववालों को नहीं पता कि कोरोना क्या है, लॉकडाउन क्या है, मास्क क्यों लगाना है, दूर क्यों रहना है, सेनिटाइजर क्यों उपयोग करना है? उन्हें सिर्फ इतना समझ आता है कि पुलिस का निर्देश है इसीलिए ये करना पड़ेगा। कोरोना एक भीषण विभीषिका का दंश है जिसकी मार सबसे अधिक प्रतिदिन कमाने खाने वालों को झेलनी पड़ी। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने उसी वर्ग को दर्शाया है कि निर्देश होने के बावजूद अपना व अपने परिवार का पेट पालने के लिए उन्हें अपने घरों से निकलकर अपने कार्य करने होते थे। ऐसे लोगों को कोरोना भी नहीं डरा सकता।

'भिखारी' कहानी मुझे कुछ अधूरी और रहस्यमयी लगी। इस कहानी का केंद्रबिंदु सूर्यकांत, किसी महिला को ढूँढने गाँव के गली, मोहल्ले, बाजार, हाट, मंदिर सब जगह जाता है, लेकिन किसी को बता नहीं पाता कि वो किसे ढूँढ रहा है क्योंकि उसे खुद भी नहीं पता है सिवाय इसके कि उस महिला के चेहरे पर चेचक के दाग हैं। शायद बहुत समय से भटकने के कारण ही उसकी दीनदशा भिखारी जैसी दिखती है। कहानी के अंत तक यह रहस्य रहस्य ही रह जाता है कि सूर्यकांत कौन है, वो किस महिला को ढूंढ रहा है और क्यों ढूँढ रहा है?

'अतिथि' कहानी में एक नरेंद्र है जो बहुत संस्कारवान है और त्यागी, समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। एक रात उसके घर पर एक अतिथि अशोक त्यागी आते हैं। नरेंद्र और उनकी पत्नी चार पाँच दिनों तक अपनी क्षमता से कहीं अधिक उनका खूब आतिथ्य करते हैं। उसकी फरमाइश पर शराब भी

लाकर पिलाते हैं, जबकि शराब का नाम भी नरेंद्र और उसकी पत्नी को अप्रिय है। इतने आतिथ्य को देखकर अंततः अशोक को लज्जा आ जाती है कि जब कुछ माह पूर्व नरेंद्र उसके निवास पर गया था तो उसने भरी दोपहरी में उसे द्वार से वापस लौटा दिया था, न बैठने के लिए कहा न पानी के लिए पूछा। जबकि इसके विपरीत नरेंद्र ने उसकी चार.पाँच दिवस तक खूब आवभगत की। इस कहानी में लेखक की गाँधीवादी विचारधारा की झलक मिलती है कि कोई कैसा भी व्यवहार करे पर हमें अपने मूल्य अपने संस्कार नहीं भूलने चाहिए।

'मदिरा' एक ग्रामीण दंपत्ति की कहानी है। राजपाल शराब का लती है। पत्नी के मना करने के बाद भी वो शराब पीने का कोई.न.कोई बहाना खोज लेता है। कभी जुताई के समय खेत से शराब की बोतल निकलती तो वो धरती माता का प्रसाद मान के पी लेता, कभी ईख की झाड़ से बोतल गिरती तो आसमान से भगवान का प्रसाद बोल के पी लेता। अंततः किरण समझ जाती है कि राजपाल शराब नहीं छोड़ पाएगा। इसीलिए वह खुद बाजार से पाँच.छह शराब की बोतल खरीद लाती है ताकि राजपाल घर पर ही पीए ताकि उस पर कोई उंगली न उठा सके। राजपाल किरणो की यह मंशा जान जाता है तो संकल्प लेता है कि अब वो कभी मदिरा को छुएगा भी नहीं। लेखक ने किरणो के माध्यम से मदिरापान को गलत न मानकर सामाजिक रूप से पीने को गलत माना है। इसीलिए उनका मानना है कि "मदिरापान किसी मनुष्य का व्यक्तिगत दोष नहीं होता जबकि सच्चाई यह है कि मदिरापान एक सामाजिक दोष है। केवल समाज का मनुष्य ही मदिरापान को अनुचित और अशुभ प्रमाणित करता है। निषेध मानता है।"

'मुआवजा' दो भाईयों बलजीत और राजबीर की कहानी है। दोनों के पास पुश्तैनी पाँच.पाँच बीघा जमीन है जोकि सरकार द्वारा रेलवे कॉरिडोर के लिए अलॉट कर ली जाती है। इसके बदले दोनों को सरकार की तरफ से एक.एक करोड़ का मुआवजा मिलता है। इतना पैसा पाकर दोनों वैभव.विलासिता में डूबकर धीरे–धीरे अपनी सारी संपत्ति खर्च कर देते हैं। अंत में नौबत यह आ जाती है कि उन पर लाखों के बिजली के बिल का कर्जा चढ़ जाता है। यह कहानी हमें बहुत बड़ी सीख देती है कि यदि हमारे पास ज्यादा पैसा आ जाए तो उसे विलासिता में नष्ट नहीं कर देना चाहिए अपितु उसे सही जगह पर निवेश करना चाहिए। और पैसा कितना भी हो जाए अपना कर्म करना बंद नहीं करना चाहिए जैसे राजबीर और बलजीत ने काम करना ही बंद कर दिया, क्योंकि पैसा कितना भी हो यदि उसे उपयोग करते ही रहेंगे तो एक दिन समाप्त हो जाएगा।

संग्रह की अंतिम कहानी 'सिला' है। "गेहूँ की फसल खेत में से कट जाने के बाद जब कुछ बिखरी पड़ी गेहूँ की बालियाँ खेत की धरती के ऊपर से चुनी जाती है उसे सिला चुगना कहते हैं।" पंडित जगन्नाथ कौशिक के खेत पर गेहूँ की फसल कटने के उपरांत निचली जाति की कुछ औरतें सिला चुगने का काम कर रही हैं। सिला चुगने वाली महिलाओं को सिलयारी कहा जाता है। इस सिला द्वारा ही ये महिलाएं कुछ दिनों तक अपने परिवार के लिए रोटी का प्रबंध करती हैं। पंडित जगन्नाथ कौशिक एक उदार व दार्शनिक स्वभाव के व्यक्ति हैं, वो सिला को परमात्मा का उपहार मानकर इस पर सिलयारियों का अधिकार मानते हैं। वो इन महिलाओं को 'बहुरानी' कह के सम्बोधित करते हैं और उन्हें न सिर्फ सिला चुगने देते हैं बल्कि भयंकर धूप में उनके लिए पानी और गुड़ की व्यवस्था भी करते हैं और अंत में सभी महिलाओं को अपनी फसल से भी चार.चार बंडल गेहूँ के देते हैं। इस कहानी से हमें सिला के विषय में तो पता चलता ही है, साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि एक मालिक का, एक दानदाता का उससे निचले तबके के लोगों के प्रति व्यवहार कैसा होना चाहिए।

इस संग्रह की सभी कहानी एक से बढ़कर एक उम्दा विषय पर है तथा बहुत ही खूबसूरती के साथ लिखी गई है। ये सभी कहानियाँ कहीं.न.कहीं हमें कुछ नया सिखाती हैं। लेखक के कहानी कहने का अंदाज़ काफी निराला है। ये एक.एक स्थिति, हाव.भाव, मनोभाव आदि का इतनी सूक्ष्मता से वर्णन करते हैं, जिससे सूक्ष्म वस्तु भी व्यापक हो जाती है जो काबिल.ए.तारीफ है। लेकिन लेखक का एक ही चीज को कहानी में बार.बार बतलाना, ये पुनरावृत्ति पाठक मन को खटकती है। इस पर यदि लेखक ध्यान देंगे तो कहानियाँ पाठकों पर और गहरी छाप छोड़ने में सफल होंगी।

कपास (कहानी संग्रह), डॉ. कुबेर दत्त कौशिक, शॉपिजेन डॉट इन

समीक्षा

# साहब का बसंत

प्रमोद त्रिवेदी पुष्प
केशव नगर, बड़वानी मार्ग, राजपुर
मोबाइल – 9893421884

गोविन्द सेन का दूसरा व्यंग्य संग्रह है। वे व्यंग्य के अलावा कहानी, कविता, ग़ज़ल आदि विधाओं में भी लेखन करते हैं। संग्रह में त्रैपन व्यंग्य संकलित हैं। साधारण विषयों पर गहरा व्यंग्य करने में उन्हें महारत हासिल है।

संस्था, व्यवस्था और व्यक्ति पर सटीक निशाना साधते हैं। 'कानून के हाथ' में उन्होंने बड़ी मार्के की बात लिखी है – "कानून के हाथ लंबे होते हैं। कितने लंबे हैं, इसे अभी नापा नहीं गया। कभी.कभी इन लंबे हाथों से चींटी भी पकड़ ली जाती है और हाथी छूट जाता है।" अतिक्रमण करने वालों पर 'आओ सड़क खाएं' में क्या अनोखी बात कही है – "भारत भूमि पर जन्म लेकर आपने सड़क को तंग गली न बनाया तो आपका जीवन व्यर्थ है।" भ्रष्टाचार पर ऐसे कई व्यंग्य हैं जैसे 'हम तो घोटाला करेंगे', 'करोड़पति बन' आदि बड़े मजेदार व्यंग्य हैं। 'ब्राउन रेड का बयान' व्यंग्य में दृष्टव्य है – "माता सरस्वती से निवेदन है कि वह बड़ी मैडम को मुझे मेरा वाजिब कमीशन प्रदान करने की सद्‌बुद्धि प्रदान करें। माता सरस्वती और महात्मा गाँधी दोनों की कृपा मुझ पर हो जाए तो मेरा जीवन सफल हो जाए।"

रचनाकारों की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए अनेक व्यंग्य हैं। 'पाठक चाहिए कि रद्दी वाला', 'विधा की दुविधा', 'बारिश और मेढ़क' आदि व्यंग्य बहुत रोचक हैं। 'करेला हुआ मीठा' में व्यंग्य की बानगी देखिए – "जैसे ही बुरे दिन आएँगे करेला फिर कड़वा हो जाएगा।" इसी तरह 'नाक का सवाल' में नाक पर बहुत खूब व्यंग्य किया है – "कुछ नाकें जितनी कटती हैं उतनी ही उनकी योग्यता में इजाफा होता है। ऐसी नाकें राजनीति के क्षेत्र में बहुत सफलता अर्जित करती हैं।"

व्यंग्य 'साहब का बसंत' में कुत्ते के कान लटकने पर घर और ऑफिस के लोग भारी चिंतित हैं। एक दृश्य देखिए – "वह इस चौपाए के आगे विवश हैं। उसकी हिमाकत के आगे नतमस्तक हैं। क्या करें वह इसे छोड़ भी तो नहीं सकते। जब टॉमी तलवे चाटता है तो उन्हें बहुत सुकून मिलता है, वे राजा हैं और रियाया उनके पैरों पर अपना माथा टेक रही है।" 'कमाल कैंची का' में कहा है – "जब दरजी जेब काटता है तो कोई उंगली नहीं उठाता लेकिन बेचारे जेबकतरे का जेब काटना अपराध माना जाता है।" हालांकि कुछ निबंध छोटे हैं। लेकिन संग्रह पठनीय है। आवरण आकर्षक व अर्थपूर्ण है।

साहब का बसंत, गोविन्द सेन, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

समीक्षा

# जीवन एक बहती धारा

जसविन्दर कौर बिन्द्रा
प्रथम मंजिल, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली
मोबाइल–9868182835

लगातार साहित्य लेखन से जुड़ी सुधा ओम ढींगरा अपने नवीन कहानी संग्रह 'चलो फिर से शुरु करें' के साथ पाठकों के सम्मुख उपस्थित हुई हैं। लंबे समय से प्रवास में रहने के कारण सुधा जी के साहित्य में प्रवासी भारतीयों को मुखर रूप से देखा जा सकता है। उनसे जुड़े पारिवारिक रिश्तों व अन्य समस्याओं को कहानी के केन्द्र में रखकर, भारत व प्रवासी संदर्भों के बीच पुल का काम भी करती है और पाठकों को वहाँ के परिवेश से परिचित भी करवाती है, जिनकी जानकारी हमें यहाँ बैठे नहीं होती। सामान्यतः भारतीयों को लगता है कि विदेशों और विशेषकर अमरीका में बसने वालों को भला कोई तकलीफ या परेशानी कैसे हो सकती है!

'वे अजनबी और गाड़ी का सफर' कहानी हमें एक ऐसे विषय से अवगत करवाती है, जिसे अक्सर फिल्मों व अन्तर्राष्ट्रीय सीरियलों में देखा जाता है। दो भारतीय पत्रकार युवतियों ने एक चीनी युवती को यूरोपीय पुरुष के साथ रेलगाड़ी में जाते देखा, परन्तु वह लड़की बहुत तकलीफ में प्रतीत हो रही थी। उन दोनों युवतियों ने किस होशियारी व सतर्कता से उस लड़की को ड्रग माफिया से मुक्त करवाया, वह कहानी पढ़ने से ही पता लगता है। इस कहानी को केवल 'एक्साइटिट' करने या आज के दौर की सनसनीखेज़ घटना के तौर पर नहीं देखा जा सकता, क्योंकि वास्तव में वह कहानी हमें अपने और अमरीकी तंत्र व पत्रकारिता के बीच के अंतर को दर्शाती है। वहाँ एक युवती पत्रकार के एक मैसेज पर सिक्योरिटी ऑफिसर्स द्वारा 'ह्यूमन ड्रग बॉम्ब' के तहत उठायी जा रही उस चीनी लड़की को उस पूरे गैंग से मुक्त करवा लिया गया।

रेलगाड़ी अपनी गति से चलती रही, यात्री अपने.आप में व्यस्त बैठे रहे और एकदम सावधानी और सतर्कता से बिना कोई शोरगुल मचाए, हाय.तौबा किए, लड़की को बचा लिया गया, मैसेज करने वाली लड़की की तारीफ भी कर दी गई। यहाँ तक कि उसके अखबार के मुख्य संपादक को उसका प्रशंसात्मक पत्र तक भिजवा दिया गया। भारत में हमने ऐसा कभी होते देखा है, इतनी सजगता, इतनी सतर्कता, बिना देर किए कदम उठा लेना...। वास्तव में ऐसी बातें यूरोपीय व अमरीकियों से सीखने वाली हैं, गारंटी है, जो हम कभी नहीं सीख पाएँगे।

अंधविश्वास केवल एशिया व भारत में ही सर्वोपरि नहीं, बाहर के देश भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं। वहाँ भी ग्रामीण क्षेत्र हमारे समान ही पिछड़े हुए, कई प्रकार के दुरावों व पाप.पुण्य के बीच उलझे हुए हैं। इसी कारण जब अगाध सुंदरी ड्यू स्मिथ ने गौरव मुखी को अपने जीवन के काले अतीत के बारे में बताया तो एक बार वह यकीन न कर पाया। उसे यह जानकर अत्यन्त हैरानी हुई कि ड्यू के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ, जैसा कि किसी भी सुंदर लड़की को जवान होने पर बुरी नीयत और दुष्कर्म से गुजरना पड़ सकता है परन्तु माँ.बाप ने अपने धर्माधिकारी के चरित्र पर संदेह न किए जाने के अपने रूढ़िवादी और अंधविश्वासी व्यवहार को निभाया। जबकि ड्यू उस दुष्कर्म के कारण एच.आई.वी. वायरस की लपेट में आ गयी। अपनी मेहनत व योग्यता के बल पर वह एक बड़ी कंपनी में उच्च पद पर पहुँच गयी, उसके पास सब कुछ था परन्तु उसकी सुंदर नीली आँखें उदास बेनूर थीं, जिसके पीछे का रहस्य आज गौरव को समझ में आया था। इसलिए ड्यू उससे शादी नहीं करना चाहती थी क्योंकि वास्तविक जीवन में ऐसा करना संभव नहीं था। इस बीमारी का इलाज सारी उम्र करना पड़ता है। बाहर के देशों में ऐसी बीमारी के मरीज ज्यादा हैं परन्तु इसके बाद भी वे जीवन में आगे बढ़ते हैं, समाज उन्हें उस प्रकार से नहीं दुत्कारता, जिस प्रकार का व्यवहार हमारे यहाँ परिवार व समाज द्वारा किया जाता है।

'वह ज़िन्दा है...' कहानी अस्पताल की उस वास्तविकता को दर्शाती है, जिसमें अल्ट्रासाउंड करने वाली नर्स कीमर्ली ने जब एकदम सपाट तरीके से गर्भवती कविता से कह दिया कि 'मिसेज़ सिंह युअर बेबी इज डेड।' ऐसा सुनते ही कविता के शरीर की गति वहीं रुक गई। फिर जो हुआ, वह बहुत ही दर्दनाक था। कविता के शरीर के गतिहीन हो जाने से मृत बच्चे को बहुत मुश्किल से उसके शरीर से बाहर निकाला गया। कविता की केवल साँसें चल रही हैं जबकि वह अपना मानसिक संतुलन खो चुकी है क्योंकि दो बार गर्भपात हो जाने के बाद यह तीसरा मौका ही उसे माँ बना सकता था परन्तु नर्स द्वारा बिना किसी भावनात्मक अंदाज़ के, प्यार या फुसला कर कहने की बजाय सच को पत्थर की तरह उसके दिल पर दे मारा। जिसे कमजोर कविता सहन नहीं कर पायी। पति के कार को पार्क करके वापस आने तक के कुछ मिनटों में ही उस दंपत्ति की ज़िंदगी उजड़ गयी। अब पति अस्पताल के मैनेजमेंट से मानवता की लड़ाई लड़ रहा है। उसका तर्क बस इतना ही है कि 'वह सच बोलने के खिलाफ नहीं पर सच को बोला कैसे जाए!' यह बात विदेशियों को हमसे सीखने की आवश्यकता है। कई बार भावनात्मक स्तर को संभालने के लिए झूठ का सहारा भी लिया जा सकता है या उसे टाला जा सकता है। वास्तव में लेखिका दो भिन्न परिवेशों व परिस्थितियों को उनके दृष्टिकोणों द्वारा अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करती है। इसे तुलना न भी कहा जाए तब भी लगता है, अच्छी बात, अच्छी सलाह जहाँ से भी मिले, उसे सीख लेने में कोई बुराई नहीं। इससे आगे बढ़ने में मदद मिलती है।

'भूल.भूलैया' भी कुछ इसी प्रकार के अंतर को बयां करती है। भारतीयों के व्हाट्सऐप ग्रुपों में लगातार इस प्रकार संदेश आ रहे थे कि एशियाई लोगों को अकेले.ठुकेले देखकर, अगवा कर लिया जाता है और उन्हें मॉल्स के बड़े ट्रकों में उठा ले जाकर, उनके मानवीय अंग निकाल लिए जाते हैं। इन संदेशों से घबरायी सुरभि ने जॉगिंग करते हुए एक पार्क में उसका पीछा करते एक पुरुष.स्त्री को उसी गैंग का समझ लिया और अपने बचाव के लिए पुलिस को फ़ोन कर दिया। पुलिस ने आकर उसकी गलतफहमी दूर की कि ये सारी अफवाहें हैं और वे स्त्री.पुरुष उसकी सहायता के लिए उसके साथ.साथ आ रहे थे। जिस घटना के कारण ऐसी अफवाहें फैलने लगी, वह एक गलती के कारण घटी और तभी खत्म हो गई परन्तु उस एशियन महिला ने बात का बतंगड़ बनाकर, अटेंशन लेने के लिए कुछ का कुछ बना दिया। यह कहानी केवल विदेशों में ही नहीं, कहीं भी रहते हुए ऐसे फैलने वाले और फॉरवर्ड किए जाने वाले संदेशों से सतर्क करती है। जिस डिजीटल मीडिया की सुख.सुविधा ने हमारा जीवन आसान किया है, उस पर बढ़ती निर्भरता हमें बेआराम करने में कोई कसर नहीं

छोड़ रही।

भावनात्मक स्तर की बात करें तो संग्रह की बहुत सारी कहानियों में इसे प्रमुखता से देखा जा सकता है, जिसमें भारतीय पारिवारिक मूल्यों की अधिकता समायी हुई है।

'कभी देर नहीं होती' में ददिहाल के लाड़ले नंदी को माँ और ननिहाल के प्रभाव में आनंद में बदलना पड़ा। ननिहाल की चालाकी और तेज़ तर्रार भरे व्यवहार के कारण आनंद और उसके छोटे भाई को बचपन से ही दादा.दादी के प्यार व ममत्व भरे माहौल से दूर होना पड़ा। सब कुछ समझने के बावजूद उसके पापा ने मम्मी और ननिहाल के आगे चुप्पी साध ली ताकि बच्चों की परवरिश पर कोई बुरा असर न पड़े। जब इतने वर्षो के बाद अमरीका के एक शहर में रहते हुए उसकी बुआ ने 'नंदी' कह कर पुकारा, तो वह इतने वर्षो के लंबे अंतराल के बाद उसी माहौल व अपनेपन से भर उठा। अंग्रेजी के दो शब्द हैं, जो संबंधों के लिए प्रयोग किए जाते हैं 'कनेक्ट' होना और 'रिलेशन' होना। परन्तु हम जानते हैं कि हर शब्द का अपना लहज़ा, टोन व संदर्भ होता ही है, उसकी अनुभूति भी अलग होती है। यहाँ कनेक्शन से अर्थ, संस्कारों से, भावनाओं से, अपने मूल से जुड़ा होना है, जिसमें वर्षो की दूरी भी कोई अर्थ नहीं रखती जबकि दूसरी ओर रिलेशनशिप में संबंध तब तक रहेगा, जब तक आप चाहें...! इसलिए रिश्तों में कनेक्शन होना चाहिए, रिलेशनशिप तो आती.जाती चीज है।

ऐसा ही कुछ 'चलो फिर से शुरु करें' शीर्षक कहानी में भी देखा जा सकता है। विदेशी महिला से विवाह कर पुत्र माँ.बाप से अलग हो गया। माँ. बाप ने भी उसकी गृहस्थी में दखल देना ठीक न समझ, उससे दूरी बनाना उचित समझा। परन्तु जब उन्हें किसी परिचित द्वारा मालूम हुआ कि मार्था, कुशल को तलाक देकर, बच्चों को उसके पास छोड़कर चली गई। इतना ही नहीं, वह उसके नाम पर तीन मिलियन का कर्ज़ ले, माँ के साथ चली गई। यदि कुशल श्वेत अमेरिकन होता तो मार्था बच्चे साथ ले जाती परन्तु भारतीय अमेरिकन पिता के बच्चों को वह कभी स्वीकार नहीं करेगी। ऐसी मुश्किल स्थिति में कुशल को भुला दिए गए माँ.बाप ही याद आए क्योंकि उसे मालूम था कि उसके माँ.बाप ने उसे कभी भुलाया नहीं होगा। इसलिए उसने पिता को फ़ोन किया और उनके पास अपने बच्चों को छोड़ कर, जीवन में एक नयी शुरुआत करने का संकल्प लिया।

कॉलेज जीवन में ऐसे कई मित्र मिलते हैं, जिनसे सारी उम्र का नाता बन जाता है और कई बार ऐसी कुछ घटनाएँ भी घट जाती हैं, जिसकी कड़वाहट जीवन में घुल कर, परिवार को भी बदनाम कर देती है। 'कंटीली झाड़ी' में डिप्टी कमिश्नर की बेटी होने के घमंड में खोयी अनुभा ने कॉलेज में अपना रौब बनाए रखा। परन्तु जब उससे अधिक योग्य और सुंदर नेहा पर उसका यह रौब न चला तो उसने नेहा को बदनाम करने की कोशिश की। यहाँ तक कि शादी के बाद किसी परिचित के घर पर मिलने पर, अनुभा ने फिर से नेहा के ड्राईवर के साथ घर से भाग जाने की बात फैला कर, ससुराल में उसकी बदनामी करनी चाही। तब नेहा ने सभी को उसकी सारी सच्चाई से अवगत करवाया कि यह उसी के साथ घटा था। नेहा को समझ आ गया कि कुछ लोग इतने विषैले व कांटों भरे होते हैं कि उनसे न केवल बच कर रहना चाहिए बल्कि उन्हें उनकी औकात भी बता देनी चाहिए ताकि उनके खतरनाक कारनामों पर लगाम लग सके। इसी प्रकार कई बार पूजा व दीपक जैसे मित्र भी होते हैं, जिनकी शुरुआत लड़ाई से हुई हो परन्तु एक. दूसरे के सम्पर्क में आने और गलतफहमी दूर होने से दोनों ही एक.दूसरे के मददगार साबित हुए। परन्तु जीवन के लंबे समय में मित्र भी खो जाते हैं, फिर ऐसी स्थिति आ जाती है, जब 'कल हम कहाँ तुम कहाँ'। कोई कहीं भी रहे, मीठी याद बन कर अवश्य दिल में समाए रहते हैं। मन क्या है, इसका चेतन/अवचेतन उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा सकता है। सदियों से इसे जानने. समझने की कोशिश धर्मग्रंथों, शास्त्रों व फिलॉसफी द्वारा की जा रही है। कई बार निकट के संबंधों को व्यक्ति सारी उम्र समझ नहीं पाता और कई बार दूर.देश में बैठे अपने बच्चों की दु:ख.तकलीफ को माँ.बाप अपने घर में महसूस कर, तड़पने लगते हैं। कई लोग, अपनों के अलावा दूसरों के दु:ख. दर्द या किसी आने वाले अनिष्ट को भांप लेते हैं। यह सब अबूझ पहेली समान है, जिसकी थाह पाना संभव नहीं, उस व्यक्ति के लिए भी नहीं, जिसे कुछ अप्रिय घटने का अंदेशा होने लगता है। माना जाता है कि सारा ब्रह्मांड एक. दूसरे से जुड़ा हुआ है, इससे बाहर कुछ भी नहीं। इसलिए प्रकृति में कुछ भी घटने का आभास, विशेषकर अप्रिय व दु:खद घटने का एहसास संसार के कुछ जीवों को होने लगता है। कुछेक मनुष्यों को ऐसी अनुभूतियों का एहसास होना उनके अपने बूते की बात नहीं होती मगर कभी.कभार ऐसा होता है। ऐसी अनुभूतियों को लेकर दो कहानियाँ इस संग्रह में शामिल हैं। 'इस पार से उस पार' में सांची को ऐसे कुछ का एहसास अपने बचपन से ही होने लगा। उसने अपने परिवार व गली.मुहल्ले में एक.दो घटनाओं के बारे में घटने से पहले ही बता दिया, परन्तु उसके परिवार वालों ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। बल्कि उसकी इस अनुभूति को हमेशा के लिए दबा देने की कोशिश की। बरसों बाद उसने फिर एक बार अपनी सखी अनुधा को फलां समय पर सड़क पार करने से चेतावनी देकर बचा लिया।

'अबूझ पहेली' नामक कहानी की मुक्ता धीर को 9/11 के हवाई जहाज़ हादसे के दृश्य कुछ दिन पहले से ही नजर आने लगे थे। उसे बार.बार दिखायी दे रहे इस दृश्य की समझ नहीं आ रही थी। परन्तु उसका तन.मन उदास, क्लांत और निर्जीव महसूस कर रहा था। अपने पति व बेटे को बता देने के बावजूद, उसे स्वयं पर भी यकीन नहीं हो रहा था। परन्तु वर्ल्ड ट्रेड सेंटर का हादसा सच में घट गया, उसके पति व बेटे को उसकी बात पर यकीन आ गया। परन्तु इतने वर्षो बाद भी मुक्ता स्वयं इस पहेली को बूझ नहीं पायी कि उसे वे दृश्य कुछ दिन पहले कैसे दिखायी देने लगे थे। वास्तव में मनुष्य विज्ञान, मेडिकल, अंतरिक्ष व तकनीकी स्तर पर कितनी भी प्रगति कर ले, प्रकृति और मन के बहुत सारे रहस्यों को समझ पाना अभी भी उसके बस की बात नहीं है।

सुधा ओम ढींगरा की सारी ही कहानियाँ उसके शीर्षक 'चलो फिर से शुरु करें' को सार्थक करती है। मानवीय जीवन उतार.चढ़ाव का ही नाम है। इसमें हिम्मत रखकर, डट कर चलने वाले ही जीवन की बहती धारा को पार कर सकते हैं।

'चलो फिर से शुरु करें', सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन, सीहोर, म.प्र. –466001

समीक्षा

# समकालीन आवाज में अशोक सिंह की चयनित कविताएँ

ब्रज किशोर पाठक
जनमत शोध संस्थान
पुराना दुमका केवटपाड़ा, दुमका (झारखण्ड)
मोबाइल–9110072128

समकालीन हिन्दी कविता के क्षेत्र में युवा कवि अशोक सिंह का नाम जाना. माना है। लगभग चौथाई सदी पूर्व, जब मैं दस वर्षों तक झारखण्ड, दुमका में पदस्थापित रहने के उपरांत वहाँ से पटना आया था। तब तक रचना के क्षेत्र में वे सक्रिय हो चुके थे और तब उनकी पहचान उदीयमान प्रतिभाशाली कवि के रूप में थी। विगत पच्चीस वर्षों में उनसे व्यक्तिगत संपर्क तो नहीं रहा, पर राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख पत्र.पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं के माध्यम से मुझे उनकी रचनाओं से गुजरने का अवसर मिलता रहा और आलोचकों.समीक्षकों द्वारा उनकी कविताओं की अनुकूल समीक्षाएं भी पत्र. पत्रिकाओं में आती रहीं। साथ ही जन.सामान्य से संबंधित मुद्दों पर उनकी विकल सक्रियता और शिक्षा साक्षरता के अतिरिक्त लोककलाओं के उन्नयन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भी परिलक्षित हुई। दुमका की भूमि कला व साहित्य के क्षेत्र में काफी उर्वर है और एक साथ वरिष्ठ साहित्यकारों की स्थापित और नवोदित पीढ़ियाँ यहाँ सक्रिय हैं।

पिछले दिनों एक साहित्यिक मनीषी की स्मृति में आयोजित कार्यक्रम में मेरा दुमका जाना हुआ। इस कार्यक्रम के दौरान ही मुझे उनकी चयनित कविताओं की पुस्तक 'समकाल की आवाज' उनके ही माध्यम से मिली जिनकी अनेक कविताएं मैं विभिन्न पत्र.पत्रिकाओं में पहले भी पढ़ चुका था। कविताओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि पच्चीस वर्ष पूर्व भले ही अशोक सिंह नवोदित या उदीयमान रचनाकार रहे हों किन्तु अब तक इस क्षेत्र में उनमें परिपक्वता आ गई है। परिवेश को विभिन्न संदर्भों में समझने और शब्दों के माध्यम से उनकी अभिव्यक्ति में उनकी दृष्टि स्पष्ट है।

पुस्तक के पृष्ठावरण पर अंकित उनके परिचय से स्पष्ट है कि उन्होंने साहित्य क्षेत्र में काफी दूरी तय कर ली है और उन्हें यश के अतिरिक्त अनेक पुरस्कार एवं सम्मान भी मिले हैं। अकबर इलाहाबादी ने कहा है – "कमी नहीं कद्रदां की अकबर, करे जो कोई कमाल पैदा।" तेजी से बदलती परिस्थितियों और संबंधों को सूक्ष्मता के साथ महसूस करने और शब्दों के माध्यम से उन्हें अभिव्यक्त करने की दिशा में कोई दुविधा या असहजता नहीं है। वर्तमान के अधिसंख्य रचनाकार वादों के दायरे में रहने के कारण स्वतंत्र दृष्टि से किसी परिस्थिति की वस्तुपरक अभिव्यक्ति करने से बचते नजर आते हैं पर अशोक सिंह, इस मोह से मुक्त होकर प्रायः बेबाक अभिव्यक्ति कर पाते हैं।

किसी यथार्थ या सामाजिक रूढ़ि को समझने की दिशा में व्यक्ति अंधविश्वासी हो सकता है, प्रायः होता भी है परन्तु ऐसे अंधविश्वास से मुक्त होने के बावजूद सामाजिक एवं अंतरंग संबंध के चलते परम्परा के अंधानुकरण के पीछे गहन मानवीय संवेदना भी हो सकती है, यह तथ्य 'माँ का ताबीज' कविता में उजागर होता है। ताबीज के चमत्कारी प्रभाव पर विश्वास नहीं होने के बावजूद ताबीज धारण करना कवि के इस विश्वास को उजागर करता है कि वह माँ के विश्वास को चोट पहुँचाना नहीं चाहता और घोषणा करता है कि "मैं ताबीज नहीं, तुम्हारा विश्वास पहन रहा हूँ माँ।"

लोकतंत्र, जनमत पर टिका होता है और जनमत उन घोषणाओं पर बनता या बदलता है जो अपने घोषणा.पत्र में कोई राजनीतिक दल करता है। जन के सामने अन्य विकल्प नहीं है। बार.बार धोखा खाने के बावजूद, सामान्य व्यक्ति जाए तो कहाँ जाए, अगर हर बार ऐसा ही हो कि घोषणा.पत्र में की गई घोषणाओं पर अमल नहीं हो। सामाजिक अव्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने की घोषणा करने के बाद भी अव्यवस्था में कमी के स्थान पर इजाफा हो, तो जन सामान्य के साथ ही कवि भी भौंचक्का रह जाता है। 'नयी सरकार' शीर्षक कविता में कवि का यही मोहभंग उजागर होता है। घोषणा पत्र में लुभावने वादे होते हैं, "जंगलों और पहाड़ों से पूरी तरह खत्म हो जाएगा आतंक/कुछ मुद्दे अब जड़ से हो जाएंगे समाप्त/हमेशा.हमेशा के लिए/कर लिया जाएगा समाधान/समस्याओं का इस कदर"। कुछ इसी तरह के लुभावने वादों से भ्रमित हो जनता नयी सरकार चुनती है और संवेदनशील कवि या पत्रकार से जब नयी सरकार के विषय में उसके मित्र उससे विचार पूछते हैं, तब वह असमंजस में पड़ जाता है "क्या जवाब दूँ मित्र को/जबकि हर दिन अखबार की सुर्खियों में/कोई बड़ी घटना हमें शर्मसार करती है।"

कवि का मोहभंग तब भी होता है जब समझदार समझा जाने वाला व्यक्ति धूर्तता पर उतर कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। सामान्य व्यक्ति जिसे समझदार समझता है, वह और कुछ नहीं, वरन् वह समझदार समझे जाने वाले व्यक्ति द्वारा अपनाए जाने वाले अवसरवाद की पराकाष्ठा है, जिसके बल पर वह लोगों की आँखों पर चश्मा चढ़ा कर स्वार्थ साधता है। संशय में पड़ा कवि मंतव्य देता है कि समझदार आदमी की समझ को समझना भी एक कला है जिसे सभी लोग समझ नहीं पाते और वह अपना काम बना कर भी सबका सुर्खरू बना रहता है। "कुछ समझदार लोग सुलझा रहे हैं/बड़ी समझदारी से हमारे समय के मसले।"

प्रौढ़ हो जाने यानी बचपन को तीस वर्ष पीछे छोड़ आने के बावजूद, कवि उन नेमतों, शरारतों और गुदगुदी लगाने वाली गलियों में भटकने के मोह को भूल नहीं पाया है, जिनका वह सहभागी और सहयात्री रहा है। बचपन में जो गेंद किसी झाड़ी में गुम हो गई, जो गुड़गुड़ी उम्र की ढलान से खाई में लुढ़क गई, जो गिल्ली उछल कर गुरु जी के माथे पर लगी और वह डण्डा जिसे गाँव की गली में अनाम भय से छोड़कर शहर में भाग आया, वे सब उसके मस्तिष्क में शिद्दत से जीवंत हैं पर इनके साथ ही, बागीचे में लगे झूले की टूटी हुई रस्सी, जो पिता के सपने में थी, उसकी स्मृति भी कवि को विह्वल करती है। वह इमली की मिठास को भी नहीं भूलता जो समय की धूप में सूख गई और अब मात्र उसका खट्टापन बचा हुआ है। दादी के अंचरे में जतन से बांधी गई चवन्नी की चोरी तो दादी के साथ ही चली गई पर दादी की बातों की मिठास भी साथ चली गई, यह कवि के लिए यंत्रणाप्रद है, "अचानक हाथ से छूट/गिर कर फूट गया स्मृतियों का वह गुल्लक/और उसमें इकट्ठी खुशियाँ/बाजार के शोर में गुम हो गयीं।" मेरी दृष्टि में, 'बचपन' इस संकलन की सर्वोत्तम कविताओं में है।

कवि अशोक सिंह दैनन्दिन जीवन में उपयोग में आने वाले सामान्य औजारों सूई.धागा, हथौड़ी, चाकू, कैंची के अतिरिक्त बांस को भी मार्मिक भाव से याद करते हैं। यादों की ऐसी ही तरंगों के बीच इन सबके साथ बचपन से जुड़े अंतरंग प्रसंग भी उनके प्राणों में अठखेलियां करने लगते हैं। इनसे संबंधित पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक मूल्यों एवं मान्यताओं में आने वाले परिवर्तनों एवं क्षरण से भी वे आहत हैं पर सर्वाधिक त्रासद मानवीय संवेदना एवं विश्वासों में होने वाला क्षरण है। परिवर्तन तो स्वाभाविक प्रक्रिया और प्रकृति का धर्म है पर ऐसा परिवर्तन हमें बेहतर व्यक्ति बनाने की दिशा में हो, तो वह स्वागत योग्य है पर इसके विपरीत कोई परिवर्तन वांछनीय नहीं है। ऐसा होना चिंताजनक है। कवि की यही चिंता इन पंक्तियों में उजागर होती है – "चाकू से की जा सकती है/चाकू की राजनीति/खेला जा सकता है/राजनीति का खेल भी चाकू से/यह बात जानते हैं/चाकू के बड़े.बड़े चाकूबाज भी/बावजूद

खेल रहे हैं वे/चाकू के बल पर राजनीति के खेल।" कवि आह्वान की मुद्रा में पूरी पृथ्वी का साहस बटोरकर चाकू और हत्यारे के विरु) अदालत में गवाही देने की बात कहता है और चेतावनी भी देता है – "याद रखो/हमारी चुप्पी से यह चाकू/एक दिन हम पर भी चलेगा/और तब भी लोग चुप रहेंगे।" कहना नहीं होगा कि ऐसी चेतावनी देकर कवि अपने सामाजिक दायित्व बखूबी निभाता है। 'रोती हुई स्त्री को देखना' अशोक सिंह की भावुक कवि दृष्टि को उद्घाटित करने वाली कविता है। "रोती रही है स्त्रियाँ सदियों से/रोती हुई स्त्री को देखना/एक पूरी सदी को रोते हुए देखना है" पर उसे देखने.सुनने के लिए आँखें और कान के अतिरिक्त हृदय भी चाहिए।

इतने सारे विपर्ययों के बावजूद कवि विश्वास और जिजीविषा को बनाए रखने के लिए हाथों में हाथ लेने, अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाने और जीवन की गर्माहट को बचाए रखने की उम्मीद करता है। वास्तव में कवित्व की यही सार्थकता है। उम्मीद को अपना आखिरी हथियार मानना कवि की सजग दृष्टि का परिचायक है। मैं समझता हूँ कि समग्र परिवेश के प्रति सजग दृष्टि रखने वाले अशोक सिंह में समुचित काव्यिक प्रौढ़ता है। इसके बावजूद कि बचपन की वीथियों में विचरण करने में स्वयं को अधिक सहज महसूस करते हैं। बचपन, उससे जुड़े संदर्भों और यादों के प्रति ऐसा ही मोह और अनुराग विभिन्न भाषाओं के कुछ विख्यात कवियों के अतिरिक्त इन पंक्तियों के लेखक में भी है। अनेक आलोचक इसे दोष मान सकते हैं पर यह सहज और स्वाभाविक है।

प्रेम मानवीय संवेदना का सर्वाधिक ललाम भाव माना गया है। अनगिन उपहासों और कठिनाइयों के होते हुए भी या इनके बावजूद, परिपूर्णता हेतु प्रेम का होना सार्थकता की अनिवार्य शर्त है। अन्य कवियों की भांति इस संग्रह में अशोक सिंह ने भी अपनी कुछ ऐसी ही प्रेम कविताएं सम्मिलित की हैं, जो मानवीय संवेदना को छूकर मन को स्पंदित करती हैं।

कवि भले ही प्रेम में आकण्ठ डूबा हो पर अपने इतर संबंधों और पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व उसकी प्राथमिकताओं में शामिल हैं। अपने प्रेम.पात्र को संबोधित करते हुए वह घोषणा करता है कि मेरी दुनिया सिर्फ तुम तक सीमित नहीं। उसके लिए पिता के टूटे चश्मे की मरम्मती और अपने बच्चे को स्कूल पहुंचाना या बीमार पड़ोसी की खोज.ख़बर लेना प्रेम.पात्र के साथ जाने से अधिक जरूरी है। प्रेम.पात्र के साथ मिल पाने में आने वाले व्यवधानों और विवशताओं की गिनती कराने में भी वह नहीं चूकता। संभव प्रेम.पात्र इन विवशताओं का आकलन नहीं कर उसके प्रति शिकायत का भाव रखे। ऐसी स्थिति में कवि प्रेम की अवस्थिति पर ही शंकाशील होकर कहता है, "क्या सचमुच प्रेम नहीं था/वह जो कुछ किया था हमने?" इस प्रकार गहराई से प्रेम करने के बावजूद, वह उन भावों की विवेचना करता है जो उसे मथते हैं। प्रेम के अन्य मानवीय संवेदनाओं की भी पड़ताल अनेक कविताएं करती हैं। परन्तु, उन भावों की गहराई तक पहुंचने के लिए, संग्रह की कविताओं को पढ़ना और उनके अन्तस्तत्त्व पहुंचने वाला हृदय होना चाहिए। अशोक जी के सम्मुख अभी विस्तीर्ण आकाश है और मुझे आशा है वे आगे जाएंगे। इसके लिए मेरी अशेष शुभकामनाएँ।

'समकाल की आवाज', अशोक सिंह, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नयी दिल्ली

आकांक्षा यादव
पोस्टमास्टर जनरल आवास
अहमदाबाद (गुजरात)
मोबाइल–9413666599

सिमटता आदमी
सिमट रहा है आदमी
हर रोज अपने में
भूल गया है
भावनाओं की कद्र
हाईटेक सुविधा व तकनीक
घर में सजाने के चक्कर में
देखता है दुनिया को
न्यूज चैनल की निगाहों से
करता है भावनाओं का इजहार
व्हाट्सएप व फेसबुक की बाहों में
रील की दुनिया में
घर नहीं देखता
पास.पड़ोस का समाज
कैद कर दिया है बच्चों को भी
वर्चुअल जीवन की
चहारदीवारियों में
चौंक उठता है
कॉलबेल की हर आवाज पर
मानो
खड़ी हो गयी हो
कोई अवांछित वस्तु
दरवाजे पर आकर।

21वीं सदी की बेटी
जवानी की दहलीज पर
कदम रख चुकी बेटी को
माँ ने सिखाये उसके कर्तव्य
ठीक वैसे ही
जैसे सिखाया था उनकी माँ ने
पर उन्हें क्या पता
ये इक्कीसवीं सदी की बेटी है
जो कर्तव्यों की गठरी ढोते.ढोते
अपने आँसुओं को
चुपचाप पीना नहीं जानती है
वह उतनी ही सचेत है
अपने अधिकारों को लेकर
जानती है
स्वयं अपनी राह बनाना
और उस पर चलने के
मानदण्ड निर्धारित करना।

श्मशान
कंक्रीटों के जंगल में
गूँज उठते हैं सायरन
शुरू हो जाता है
बुल्डोजरों का तांडव
खाकी वर्दियों के बीच
दहशतजदा लोग
निहारते हैं याचक मुद्रा में
और दुहायी देते हैं
जीवन भर की कमाई का
बच्चों के भविष्य का
पर नहीं सुनता कोई उनकी
ठीक वैसे ही
जैसे श्मशान में
चैनलों पर
लाइव कवरेज होता है
लोगों की गृहस्थियों के
श्मशान में बदलने का।

आलेख

# हिन्दी भाषा राष्ट्र की संजीवनी है

डॉ. नलिनी श्रीवास्तव
शिवायन, सेक्टर–1, भिलाई
मोबाइल–9752606036

"समाज से ही हमें भाषा का ज्ञान होता है। भाषा समाज की ही सृष्टि है। इसके निर्माण में छोटे.बड़े सभी संलग्न होते हैं" – बख्शी जी।

14 सितम्बर 1949 राष्ट्रभाषा हिन्दी दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मनाते आए हैं। इस आयोजन का मूल उद्देश्य है अपने देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसका गौरवपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयास करना। लेकिन क्या कारण है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बनने के पश्चात् आज भी सत्ता के गलियारे में भटक रही है। बड़े.बड़े विज्ञों, राजनीतिज्ञों की सर्वसम्मति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया।

विश्व के हर राष्ट्र की अपनी एक राष्ट्रभाषा होती है। राष्ट्रगीत, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय मुद्रा भी होती है। उसके द्वारा राष्ट्र का गौरव बौद्धिक उत्कर्ष की अभिव्यक्ति होती है, वह विचार.विनिमय का सशक्त साधन भी हुआ करती है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध में संविधान में लिखा है कि संघ की सरकारी भाषा देवनागरी लिपि में होगी, तथा हिन्दी भाषा के प्रचार.प्रसार को बढ़ावा देना संघ का कर्तव्य होगा।

1967 में जो सरकारी भाषा संशोधित अधिनियम पारित किया गया, उसके अनुसार हिन्दी और अंग्रेजी का इस्तेमाल सरकारी काम.काज के लिए तब तक होता रहेगा, जब तक अंग्रेजी का इस्तेमाल बंद करने के लिए उन राज्यों द्वारा प्रस्तावन पारित हो जाए, जिन्होंने अपने यहाँ सरकारी भाषा के रूप में हिन्दी को नहीं अपनाया है। इस संबंध में प्रधानमंत्री ने अहिन्दी भाषियों को बार.बार आश्वासन दिया है कि उन पर किसी भी रूप में हिन्दी थोपी नहीं जायेगी। इस प्रकार हिन्दी भाषा को अपने देश में ही गौरव की अधिकारिणी होते हुए भी उस पद से हटा दिया गया और इसका फल यह हुआ कि आज देश को आजाद हुए 75 वर्ष हो गये हैं फिर भी हिन्दी वहीं के वहीं खड़ी है। और आज भी अंग्रेजी भाषा सम्पर्क की भाषा राज.काज में बनी हुई है। भविष्य में यह स्थिति कब तक रहेगी यह अनिश्चित है।

विश्व के सभी भाषाविदों ने एक स्वर से यह स्वीकार कर लिया है कि हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि विश्व की सबसे अधिक सशक्त एवं सक्षम भाषा है। वैज्ञानिकता के दृष्टिकोण से देवनागरी लिपि सर्वश्रेष्ठ है। इसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है।

इसके अक्षरों का वर्गीकरण भी पूर्णतः वैज्ञानिक है। उसमें विश्व की किसी भी भाषा को यथावत् रूप में लिखा जा सकता है।

संस्कृत संसार की सबसे प्राचीन और समृद्ध भाषा है। हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि में विश्व की किसी भी भाषा के एक.एक शब्द के लिए चार.चार पर्याय देने की क्षमता है। संसार के साथ ही अन्य तकनीकी कार्यो के लिए भी एक आदर्श भाषा है।

देश की अखंडता हिन्दी भाषा द्वारा ही दृढ़ता के साथ संभव हो सकती है। हिन्दी को नकारने का मतलब है अपने राष्ट्र को नकारना। इसीलिए यह आवश्यक है कि हम अपने स्वाभिमान को जागृत करें।

बख्शी जी ने 'विश्व भाषा' नामक निबंध में लिखा है – "भारत में राष्ट्रीयता और एकता का जो भाव प्रबल है, नहीं हुआ है, उसका कारण यही भाषा भेद है। जो जिस प्रांत की भाषा से अनभिज्ञ होता है, वह वहाँ के निवासियों की अवहेलना की दृष्टि में अवश्य देखता है। यदि हम किसी प्रांत के निवासी से उसी प्रांतीय भाषा में बात करें, तो उससे शीघ्र ही घनिष्ठता हो जाती है। भारतवर्ष के लिए सबसे उपयुक्त भाषा हिन्दी है। यदि लोग अपने हठ और दुराग्रह को छोड़कर हिन्दी को अपना लें तो भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का भाव सहज में आ जाए। के प्रांतीय भाषा की उपेक्षा न की जाए?"

इंग्लैण्ड का इतिहास पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि एक लम्बे समय तक उनका देश न केवल गुलाम था बल्कि अंग्रेजी को भी पिछड़ी भाषा व पिछड़ेपन की निशानी मानता था। राजकाज की भाषा तब अंग्रेजी नहीं थी। ट्यूटोनिक युग तक में इंग्लैण्ड की सरकारी भाषा लैटिन थी। एडवर्ड तृतीय ने फ्रेंच फ्रांसीसी को इंगलैंड की राज काज की भाषा बनाया था। अंग्रेजी इंगलैंड में पिछड़ों की भाषा मानी जाती थी। जनवरी सन् 1650 में कानून बना कि सभी कार्यालयों में अंग्रेजी से ही काम.काज की प्रक्रिया शुरु की जाए।

भारत जैसे विशाल देश के लिए हम भारतवासी किसी पर जुर्माना नहीं लगा सकते हैं, हिन्दी भाषा को सरल.सहज बनाने में विशेष ध्यान दे सकते हैं। अधिक से अधिक लोग बात करने में हिन्दी का उपयोग करें। बहुमत से यह सि) हो सफल है। वागार्थ जनवरी 2003 के सम्पादकीय लेख में लिखा गया है –"चीनी तथा हिन्दी से संबंधित सभी आंकड़े एक साथ एकत्र करें तो विश्व भर में चीनी भाषा को जानने वालों की कुल संख्या जहाँ एक अरब 30 करोड़ है। वहीं हिन्दी जानने वालों की संख्या एक अरब दस करोड़ से भी अधिक होगी। परमानंद श्रीवास्तव ने लेख में लिखा है – विश्व में हिन्दी बोले जाने वालों का चीन के बाद दूसरा नंबर भारत का है। अतः हम समस्त भारतीयों को चाहिए कि अपनी ओर से दृढ़ निश्चय के साथ अधिक सरल हिन्दी सहजता के साथ प्रयोग करें। सम्पूर्ण विश्व में भारत ही ऐसा देश है जहाँ विविधता में एकरूपता है। जहाँ अनेकता में एकता है। यह विशेषता सिर्फ भारत में ही है। सिर्फ भाषा की ही बात नहीं, रीति.रिवाज, पहनावे.ओढ़ावे, खान.पान, धर्म.कर्म सब में कुछ न कुछ अंतर है। अंत में हम सब भारतीय हैं। यह भारतीयता की गरिमा ही हम सभी को गरिमामय बनाने के लिए पर्याप्त है। राष्ट्रभाषा हिन्दी इसमें एक धागे की तरह अपने कर्तव्य को दर्शाती है, और विविध राज्यों की भाषा उस धागे में फूल की तरह पिरोयी जाती है। ताकि भारत एक सुन्दर दिव्य फूलों के हार के रूप में परिलक्षित होता है।

वह दिन दूर नहीं जब विश्व में प्रथम स्थान पर हिन्दी भाषा प्रतिष्ठित होगी। इस संबंध में हमें जापान से सबक लेना चाहिए। जापान में शिक्षा का माध्यम जापानी भाषा है। जापान में बाहर की सभी भाषाओं की किताबों का जापानी में अनुवाद होता है। ऐसी ही कुछ व्यवस्था यदि हमारे देश में हो जाए, तो हम जल्द ही अपने लक्ष्य को पा सकेंगे। महात्मा गाँधी ने कहा था – "विदेशी भाषा सीखना बुरा नहीं, पर अपनी भाषा सर्वोपरि है।

भारतवर्ष के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी संजीवनी के समान है। हमें अपने देश की धड़कन को बनाए रखने के लिए क्यों न अपने स्वाभिमान को जागृत करें। विनोबा भावे ने ब्रज भाषा सूत्र निकाला था। वासुदेव शरण को 'राष्ट्र का स्वरूप' के अनुसार आलेख को पढ़कर परितृप्ति नहीं हुई। अतः अंग्रेजों ने हिन्दी सीखा और तब पढ़कर उन्हें संतुष्टि हुई। ऐसे साहित्य की रचना होनी चाहिए।

इतिहास गवाह है जब तुर्कीस्तान आजाद हुआ तो उसके बादशाह

कमाल पाशा ने अपने समस्त शासकीय कर्मचारियों को बुलाकर पूछा – समस्त प्रशासनिक कार्य–व्यापार तुर्की भाषा में होने में कितना समय लगेगा। कुछ लोगों ने दो वर्ष कहा, कुछ ने 24 महीने का समय माँगा। इस प्रकार कमाल पाशा ने कहा – मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। 24 घंटे में मुझे समस्त कार्य तुर्की भाषा में दिखाई देना चाहिए।

इस संबंध में मुझे एक घटना याद आती है – "शेख सादी शायर जब 90 वर्ष के हुए तब अरब के सुल्तान ने उनके पास एक बेशकीमती हीरा भेजा और लिखा कि यदि इस हीरे के जोड़े की कोई शायरी आप के पास हो तो भेज दो।"

शेख सादी ने हीरे को अच्छी तरह देखा और जवाब में लिखा – "आप मेरी शायरी की बात करते हो किंतु शायद आपको मालूम नहीं कि मेरी शायरी का एक.एक शब्द आपके इस हीरे से कहीं अधिक कीमती है।"

मेरी शायरी दो बिछड़े दिलों का स्नेह.सेतु बनने की क्षमता रखती है, जबकि आपका हीरा दो इंसानों के बीच खून की दरिया बहाने का जरिया बनता है। मेरे शब्द में ईश्वर के सिंहासन को हिलाने की क्षमता है, जबकि आपका हीरा किसी भूखे इंसान की भूख मिटाने के लिए, एक चने की बराबरी नहीं कर सकता।उल्टा उनका काल बन जाता है।

अब आप ही निर्णय कीजिए कि मेरी शायरी कहाँ है और आपका हीरा कहाँ है?

आज भारत के नैतिक आचरण की गरिमा एवं भारतीय संस्कृति की मूलभूत अवधारणा की रक्षा करने के लिए हमें आवश्यकता है कि हम अपने चिंतन.मनन से अपने विचारों की अनमोल ज्योति प्रकाशित करें कि लोग.बाग स्वत:हिन्दी भाषा के प्रति अपना सिर झुकाने को तत्पर हो जाएँ।

"मंजिल उन्हीं को मिलती है, जिनके सपनों में जान होती है।
पंख से कुछ नहीं होता, हौसलों से उड़ान होती है।"

कविता

तेज नारायण राव
सहायक प्राध्यापक, कोल्होड़िया,
चिकनियाँ, दुमका
मोबाइल– 6207586995

हमारे गाँव का चबूतरा
विशाल बरगद की छाँव में
मौन समाधि लिए बैठा
हमारे गाँव का यह चबूतरा
ईंट-पत्थर-गारे से बना
सिर्फ कोई निर्जीव स्थल भर नहीं है
इससे जुड़े
कई किस्से-कहानियाँ हैं
हमारे गाँव की
जिसे इसी चबूतरे पर बैठकर
हमने सुना है
अपने गाँव के बूढ़े-बुजुर्गों से
यहाँ तक कि यहाँ रहते
बहुत कुछ देखा भी है
अपनी आँखों से
और पढ़ा भी है इस पर लिखा
इसका अलिखित इतिहास
यह चबूतरा सहता है
सबके दु:खों का भार
पर नहीं बताता कभी किसी को अपना दु:ख
इसी चबूतरे पर माँ सुखाती थी धान
पिताजी भी इसी चबूतरे पर
बैठ बतियाते थे गाँव घर के लोगों से
घर गृहस्थी का हाल-चाल
गाँव की पंचायत हो या राजनीति
या फिर शादी-विवाह नाच-गाना
भजन-कीर्तन
सब कुछ इसी चबूतरे पर
होता आया है वर्षों से
इसी चबूतरे पर
गाँव की अस्सी साल की एक बुढ़िया
रोज लुकटिया टेकती आती है
अपने आप से और
याद करती है
अपने गुजरे दिनों को
गाँव का एक मताल भी अक्सर
दारू पीकर आता है
और जी भरकर गालियाँ देता है
ऊपर से नीचे तक सरकार को
एक प्रेमी जोड़ा भी अक्सर
आकर बैठता है इस पर
और सबसे छुप-छुपाकर
खेलता है आँख-मिचौली
गाँव घर की महिलाएँ भी
जब आती हैं
चापाकल में पानी लेने
तब यहीं बैठकर बतियाती हैं अक्सर
एक-दूसरे के घर की चुगली करती
पूरे गाँव के किस्से
थका-हारा कोई राहगीर भी आता है
तो इसी चबूतरे पर लेटकर
उतारता है अपनी थकान
अक्सर सबका दु:ख-सुख
हरता है यह गाँव का चबूतरा
देता है सबको एक नई ऊर्जा
जाति-धर्म, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर
कभी किसी से भेदभाव नहीं करता
देता है एक समान सबको सम्मान
इसमें हमारे गाँव की आत्मा बसती है
पूरे गाँव का इतिहास छिपा है इसमें
अब यह अलग बात है कि
इसी गाँव में रहते कभी
सुनाई नहीं पड़ी तुम्हें
इसकी आत्मा की आवाज
क्योंकि तुम्हारे लिए तो सिर्फ
ईंट-गारे-पत्थर से बना
एक निर्जीव चबूतरा भर है यह!

आलेख

# नोबेल पुरस्कार प्रदात्री समिति द्वारा हिन्दी भाषा और लेखकों की अनदेखी

मनोरंजन सहाय सक्सेना
इन्द्रपुरी, लालकोठी, जयपुर, राजस्थान
मोबाइल–9461093077

(प्रेमचंद जी और उनके समकालीन लेखकों से आज तक)

वर्ष 1909 में स्केंडिनेवियाई लेखिका, सेलमा लागर लोफ को नोबेल पुरस्कार प्रदान करते हुए पुरस्कार प्रदात्री समिति की ओर से कहा गया था कि – "उनके उच्च आदर्शवाद, जीवन्त कल्पनाशक्ति तथा आत्मिक बोध जो इनकी रचनाओं की विशेषता है, के लिये इन्हें यह पुरस्कार दिया जा रहा है।"

उपन्यास.सम्राट मुंशी प्रेमचन्द जी के सभी उपन्यासों में उच्च आदर्शवाद, जीवन्त कल्पनाशक्ति तथा आत्मिक बोध के दर्शन तो होते ही हैं, बल्कि उन्होंने तो 'आदर्शोन्मुखी.यथार्थवाद' की परम्परा की स्थापना की। 1922 में प्रकाशित उनके उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में ये समस्त मान्यताएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। मगर उसे इस पुरस्कार के लिए नामित नहीं किया गया। इसके बाद 'रंगभूमि' का प्रकाशन 1925 में हुआ था मगर इस उपन्यास को तो ब्रिटिश इंडिया में इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान के प्रतीक नोबेल पुरस्कार के लिये नामित करने के लिये विचार कर पाना ब्रिटिश शासकों के लिये इसीलिए असंभव था कि इस उपन्यास के प्रथम 11 अध्यायों में प्रेमचंद जी ने ईसाई धर्म और ईसाइयत की बखिया उधेड़ कर रख दी है। उनका एक वयोवृद्ध पात्र ईश्वर सेवक के हर संवाद का आरम्भ यीशु को उन पर दया करने की भीख के साथ होता है मगर दैनिक जीवन में वह पूरा मूंजी है। ईश्वर सेवक का पुत्र प्रभु सेवक ईसाइयत का इस्तेमाल सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यावसायिक लाभ के लिये करने में संकोच नहीं करता और उसकी पत्नी मिसेज सेवक और उसकी पुत्री सोफिया के संवादों में ईसाइयत की रूढ़िवादी संकीर्णता और व्यक्तिगत लाभ के लिये उसे किसी वस्तु की तरह इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति की पोल खोलकर रख देती है। यही नहीं 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द जी ने एक और बड़ी बात का खुलासा किया है। धर्म परिवर्तन के लिए तैयार किये गये अन्य धर्मावलम्बियों को धर्म प्रचारक ईसाई धर्म में दीक्षित होने के बाद जब वह सामाजिक और धार्मिक समानता के नाम पर चर्च से लेकर आम समाज में अपने प्रति समान व्यवहार नहीं पाते और उनकी स्थिति न खुदा ही मिला न बिसाल.ए.सनम वाली हो जाती है तो वह उच्चकुलीन ईसाई समाज में मान्यता प्राप्त करने के लिए अपने ही मूल धर्म की भर्त्सना करने लगते हैं।

उनके 'प्रेमाश्रम' से लेकर 'गोदान' तक किसी भी उपन्यास अथवा कहानी संग्रह को इस पुरस्कार से सम्मानित करने पर कभी विचार ही नहीं किया गया, इसके लिए पुरस्कार प्रदात्री समिति के हिन्दी भाषा के प्रति अवमाननापूर्ण.पूर्वाग्रहयुक्त दृष्टिकोण के कुछ कारणों के साथ इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान के लिए चयनित साहित्यकारों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अनियमितताओं का उल्लेख स्व. श्री सुरेन्द्र तिवारी ने उनके द्वारा सम्पादित 'नोबेल पुरस्कार विजेताओं की 51 कहानियां' के 'कुछ बातें नोबेल पुरस्कार की' शीर्षक से सम्पादित लेख में विस्तार से किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान के प्रतीक विश्व प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार की स्थापना मानवता के लिये संहारक अस्त्र डायनामाइट के आविष्कारक अल्फ्रेड नोबेल द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति की वसीयत के अनुसार 1895 में हुई और 1940, 1941 और 1942 के अशान्त वर्षों को छोड़कर यह पुरस्कार विज्ञान, चिकित्सा, अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में मानवीय हित के नवीनतम अनुसंधानों, सिद्धान्तों की स्थापना तथा अशान्त क्षेत्रों में शान्ति की स्थापना के लिए शोध एवम् संघर्षपूर्ण प्रयासों के लिए निरन्तर दिया जाता रहा है। इन विभिन्न क्षेत्रों में अभी तक 961 (नौ सौ एकसठ) जन को इस पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है, इनमें 35 महिलायें हैं। उपलब्ध जानकारी के अनुसार अब तक 10 भारतीयों को नोबेल पुरस्कार मिल चुका है मगर इनमें से केवल 5 पुरस्कार विजेता ही भारतीय नागरिकता धारित भारतीय हैं।

उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं के लिये नोबेल पुरस्कार दिया जाना 1901 से आरंभ हुआ और फ्रांसीसी लेखक सुली प्रुधोम पहले नोबेल पुरस्कार विजेता बने, मगर फ्रांसीसी अकादमी के कई सदस्यों द्वारा प्रस्तावित उनके चयन पर शुरु से ही विवाद भी खड़ा हो गया, क्योंकि इस पुरस्कार के लिए शर्त यह थी कि किसी नवीन अर्थात् हाल ही में प्रकाशित पुस्तक को पुरस्कार दिया जाना चाहिए न कि उस काम के लिए जो बहुत पहले का हो। जबकि प्रूधोम को पुरस्कार उनकी 1888 से पूर्व प्रकाशित पुस्तकों पर दिया गया था। उस समय लोगों का यह मत भी था कि यह पुरस्कार टॉल्स्टॉय को दिया जाना चाहिए था मगर हिन्दी लेखकों की तरह टॉल्स्टॉय का नाम प्रस्तावित ही नहीं हुआ था और एक बार अवसर निकल जाने के बाद टॉल्स्टॉय को यह पुरस्कार कभी मिला ही नहीं।

उत्कृष्ट.साहित्यिक रचनाओं के लिए नोबेल पुरस्कार अभी तक 120 साहित्यकारों को दिया जा चुका है, इनमें गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और सर विद्याधर सूरज प्रसाद नायपाल को मिलाकर दो भारतीय साहित्यकारों को यह पुरस्कार दिया जाना माना गया है। यहाँ इस तथ्य का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना अप्रासंगिक नहीं होगा कि यह अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार गुरुदेव सहित दो भारतीय साहित्यकारों को दिया गया है, मगर यह किसी हिन्दी लेखक अथवा भारतीय भाषा में किसी साहित्यिक विधा में लेखन के लेखक को प्रदान नहीं किया गया है।

इसके साथ ही यह उल्लेख करना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित विद्याधर सूरज प्रसाद नायपॉल को दूसरा भारतीय माना जाता है। इस पुरस्कार से सम्मानित होने के कारण वे सम्मान के पात्र तो अवश्य हैं, मगर भारत के साथ उनका संबंध केवल इतना है कि उनके पूर्वज कभी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर के निवासी थे, जिन्हें त्रिनिदाद (सम्भवतयः खेतों में काम करने वाले कामगारों के रूप में) ले जाया गया। वहाँ 17 अगस्त 1932 को त्रिनिदाद के चगवानस नामक नगर में उनका जन्म हुआ था। साहित्य के लिए नायपाल को उनकी साहित्यिक कृति 'हाउस ऑफ मिस्टर विश्वास' पर यह अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया, जो अंग्रेजी में लिखा गया उपन्यास है। यानी नायपाल जी को अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से हिन्दी लेखक या लेखन का सम्मान नहीं हुआ है और नायपाल जी तो जन्मजात भारतीय भी नहीं हैं। उनकी नागरिकता भी ब्रिटिश नागरिकता थी।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को यह अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त होना हर भारतीय के गर्व और गौरव का विषय है, और होना चाहिए। मगर गत सदी के सम्भवतयः अस्सी के दशक में कुछ आलोचकों का यह आरोप प्रकाश में आया था कि गुरुदेव को यह पुरस्कार उनकी किसी कविता, जो किसी तत्कालीन ब्रिटिश शासक की प्रशंसा करते हुए लिखी थी, उस वजह से मिला,

जो तथ्य सम्मत प्रतीत नहीं हुआ और अधिक चर्चा का विषय नहीं बना, मगर हाल ही में स्व. सुरेन्द्र तिवारी द्वारा सम्पादित कहानी संग्रह की प्रस्तावना में हिन्दी के प्रमुख साहित्यकार तथा आलोचक अज्ञेय के कथन – वृद्ध जो रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा गीतांजलि के अंग्रेजी अनुवाद के बारे में ही है ( "अगर वे) श्री रवीन्द्र नाथ गीतांजलि का स्वयं अनुवाद (अंग्रेजी में) न करते और उनके समर्थक यूरोप और अन्य पश्चिमी देशों में नहीं होते तो उन्हें यह पुरस्कार कभी नहीं मिलता" और "जो निर्णायक समिति हिन्दी के बारे में कुछ नहीं जानती, वह बांग्ला के बारे में क्या जानेगी।" से असहमति का कोई तथ्य सम्मत कारण प्रतीत नहीं होता।

टैगोर द्वारा बांग्ला भाषा में लिखी गई कविताओं का काव्य संग्रह 'गीतांजलि' 1910 में प्रकाशित हुआ था और फिर इसका गद्य कविताओं के रूप में (अंग्रेजी में) 'सांग्स आफरिंग' के नाम से स्वयं टैगोर द्वारा अनुवाद किया गया और विलियम बटलर येट्स द्वारा इसके परिचय के साथ इसे 1942 में लन्दन में इण्डिया सोसाइटी द्वारा प्रकाशित किये जाने के उपरान्त 1913 में यह कविता संग्रह नोबेल पुरस्कार के लिए नामित होकर पुरस्कार से सम्मानित हुआ। इस कालखंड की क्रमबद्धता इस धारणा को बल देती है कि गुरुदेव को नोबेल पुरस्कार मूलरूप से उनकी बांग्ला भाषा में सृजित कविताओं के संग्रह 'गीतांजलि' के लिये नहीं बल्कि उनके अंग्रेजी में किये गये अनुवाद संग्रह 'सांग्स ऑफरिंग्स' को प्रदान किया गया था और यह 'अज्ञेय' के कथन की पुष्टि करता है।

हमारी राष्ट्रभाषा और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कही जाने वाली हिन्दी की यह अनदेखी, नोबेल पुरस्कार प्रदात्री समिति की ओर से ही नहीं की जाती है, अन्य अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के प्रतीक पुरस्कारों में भी स्थिति यही है।

वर्ष 2022 में हिन्दी लेखिका गीता श्री को उनके उपन्यास 'रेत की समाधि' पर 'बुकर पुरस्कार' हर भारतीय के लिए गर्व और गौरव का विषय है। मगर हकीकत वही है कि इसका प्रकाशन 2018 में हुआ था और बाद में 27 मई 2022 को 'रेत की समाधि' का अंग्रेजी में अनुवाद डेजी रॉकवेल नामक विदेशी महिला द्वारा 'टॉम्ब ऑफ सैण्ड' के नाम से करने पर प्रकाशित हुआ और उसके बाद ही इसे बुकर पुरस्कार के लिये चुना गया। तो सत्य तो यही भासित होता है कि पुरस्कार गीताश्री के मूल उपन्यास 'रेत की समाधि' को नहीं बल्कि उसके अंग्रेजी संस्करण को दिया गया।

उपरोक्त तमाम वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान के प्रतीक 'नोबेल पुरस्कार' भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के लिए तो दूर हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी में किये गये उत्कृष्ट एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित लेखन के लिए भी विचारणीय नहीं है।

वर्ष 1909 में स्केंडिनेवियाई लेखिका सेलमा लागर लोफ को यह पुरस्कार प्रदान करते हुए पुरस्कार प्रदात्री समिति की ओर से की गई टिप्पणी और उसके सन्दर्भ में प्रेमचन्द जी के उपन्यास तथा कथा साहित्य के मूल्यांकन नहीं करने के संबंध में पहले उल्लेख किया जा चुका है। अब उसी सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि रूडयार्ड किपलिंग जैसे विवादित लेखक को 1907 में यह पुरस्कार प्रदान करते समय पुरस्कार प्रदात्री समिति ने कहा था – "निरीक्षण शक्ति के लिए विचारों की शक्ति की अपूर्वता के लिए, तथा वर्णन की अद्वितीय शक्ति के लिए जो कि इस विश्व प्रसिद्ध लेखक की रचनाओं की विशेषता है के लिये इनको यह पुरस्कार दिया जाता है।"

वर्ष 1915 में फ्रांसीसी लेखक 'रोम्यां रोला' को पुरस्कार प्रदान करते हुए संस्था द्वारा कहा गया कि – "इनकी साहित्यिक रचनाओं के उच्च आदर्श के सम्मानस्वरूप तथा उस सहानुभूति और सत्य के प्रेम के लिए, जिसके द्वारा इन्होंने नाना प्रकार के मनुष्यों का वर्णन किया है, उन्हें यह पुरस्कार दिया जाता है।"

इसी तरह 1920 में इटली की 'ग्रेजिया डेलोडा' को नोबेल पुरस्कार देते हुए संस्था ने टिप्पणी की थी, "आदर्शवाद द्वारा प्रेरित इनकी रचनाओं के लिए जो अमूर्त को मूर्त में डाल सकने वाली सफाई के साथ इनके अपने द्वीप के जीवन को चित्रित करती है तथा गहराई और सहानुभूति के साथ समूची मानव जाति की समस्याओं का विवेचन विश्लेषण करती है, उन्हें यह पुरस्कार दिया जाता है।"

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में उच्च आदर्शवाद, जीवन्त कल्पना शक्ति तथा आत्मिक बोध के साथ निरीक्षण शक्ति के लिए विचारों की शक्ति की अपूर्वता भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य में "आदर्शोन्मुखी, यथार्थवाद की परम्परा का निर्वहन स्पष्ट दिखाई देता है और फ्रांस के लेखक रोम्यां रोला और इटली की लेखिका ग्रेजिया डेलोडा के लेखन की समस्त विशेषताओं पर तो प्रेमचंद जी का 'प्रेमाश्रम' एकदम खरा उतरता है, इस पर भी नोबेल पुरस्कार के लिए साहित्यकारों का चयन करने वाली समिति को यह इसलिए पता नहीं लगा कि प्रेमचंद जी ने उनका अनुवाद न तो स्वयं अंग्रेजी में किया और न करवाया तो किसी अंग्रेज द्वारा उनके उपन्यास का परिचय लिखा जाना तो बहुत दूर की बात होती।

इसी समिति द्वारा 1934 में इटालियन नाटककार लुइजो पिराण्डेलो को पुरस्कार से सम्मानित करते हुए की गई टिप्पणी – इनकी नाट्यकला, जो सदैव ही मनुष्य के व्यक्तित्व की समानता से सम्बन्धित रही है, वास्तव में दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रश्नों को अद्भुत रूप में तथा बार बार प्रस्तुत करने में समर्थ और सफल है।" पर विचार किया जाये तो हिन्दी के महान नाटककार और कवि जयशंकर प्रसाद के नाटक अथवा महाकाव्य 'कामायनी' को इस पुरस्कार के लिए नामित क्यों नहीं किया गया तो इसका उत्तर हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति स्वीडिश अकादमी के अवमाननापूर्ण पूर्वाग्रह – "जिस भाषा के बारे में हम कुछ जानते ही नहीं, उसके किसी साहित्यकार को यह पुरस्कार देने के बारे में हम सोच भी कैसे सकते हैं", तो कारण है ही, हमारी हिन्दी साहित्यिक अकादमियों सहित आजादी के बाद सभी सरकारों की घोर उदासीनता भी महत्वपूर्ण सहभागी कारक है, क्योंकि उनकी ओर से हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिये तो प्रयास बेहद सीमित हैं ही, नोबेल पुरस्कार प्रदान करने वाली संस्था स्वीडिश अकादमी द्वारा पुरस्कृत लेखकों की रचनाधर्मिता की गुणवत्ता के समक्ष तो हिन्दी लेखकों के लेखन की पूर्णतया प्रामाणिकता स्थापित करने के बारे में कोई प्रयास हुआ ही नहीं है।

प्रेमचन्द जी के तो समस्त उपन्यास ब्रिटिश शासनकाल में लिखे गये और प्रेमचन्द जी स्वयं अंग्रेज सरकार की आँखों की किरकिरी रहे थे। इस सन्दर्भ में यह कथन भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि साहित्यकारों को यह पुरस्कार मरणोपरान्त प्रदान करने के नियम को वर्ष 1974 में संशोधित कर प्रतिबन्धित किया गया, मगर 1947 से भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता से लेकर 1974 तक भी मुंशी प्रेमचन्द जी, नाटककार जयशंकर प्रसाद जी के नामों पर पुरस्कार के लिए विचार करने तक भी कोई प्रयास नहीं हुए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जर्मन इतिहासकार मामसन की पुस्तक A History of Rome 1850 में प्रकाशित हुई थी और 52 वर्ष बाद 1902 में उसे नोबेल पुरस्कार मिला।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी और प्रसाद जी तो भारत को स्वतंत्रता मिलने के पूर्व ही दिवंगत हो गये मगर उसके उपरान्त हिन्दी साहित्य की छायावाद की प्रमुख स्तम्भ महादेवी वर्मा जैसी कवयित्री, हरिवंश राय बच्चन

जी, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर' जैसे कवि अथवा सदी के महान गीतकार नीरज जी को भी यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान दिलाने के बारे में कोई प्रयास हुआ ही नहीं क्योंकि जहाँ विश्व के अन्य देशों में सम्मान व्यक्ति का नहीं राष्ट्र का गौरव माना जाता है, हमारे देश में यह राष्ट्रीय नहीं व्यक्तिगत सम्मान माना जाता है। पिछले कुछ व्यक्तियों को मिले अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों के प्रति उचित सम्मान के स्थान पर उनके प्रति की गई अवमाननापूर्ण प्रतिक्रियायें इसका उदाहरण हैं।

इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान के प्रति पुरस्कार के बारे में – 'नोबेल पुरस्कार विजेता की 51 कहानियां' के सम्पादक ने इस संग्रह की प्रस्तावना में यह उल्लेख किया है कि 'विश्व प्रसिद्ध उपन्यासकार इरविंग वैलेस ने इस पुरस्कार की धांधलेबाजी पर 'द प्राइज' उपन्यास लिखा और फिर 'द राइजिंग ऑफ ए नोबेल' लिखा। इसमें उन्होंने स्वीडिश अकादमी के एक निर्णायक सदस्य 'हेदिन' के विचार रखे जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। 'हेदिन' ने निर्णायकों के अवरोधों और कमजोरियों को बताने के बाद यह स्वीकार किया है कि जहाँ अनेक निर्णय एकदम सही और अत्युत्तम थे वहीं अनेक मूर्खतापूर्ण पूर्वाग्रह और राजनीति से प्रेरित भी थे। टॉल्स्टॉय, इब्सन और स्ट्रिडवर्ग जैसे चोटी के साहित्यकारों को यह पुरस्कार इसलिये नहीं मिल सका कि एक निर्णायक कवि और समीक्षक कार्ल डेविट इन तीनों का कट्टर विरोधी था। इसके साथ ही यह उल्लेख – "फिर भी आज यह एक आम धारणा बन गई है कि नोबेल पुरस्कार अब विश्व राजनीति में पूंजीवादी राजनीति से मुक्त नहीं रहा है, इसी कारण बहुत से द्वितीय श्रेणी के लेखक पुरस्कार पा जाते हैं, पुरस्कार की श्रेष्ठता और गुणवत्ता पर बहुत कुछ कह जाता है।" इस अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार की लेखकों के निष्पक्ष चयन की प्रक्रिया में अनियमितता की ओर इंगित करता है।

अज्ञेय जी का कथन – "अगर वे (टैगोर) गीतांजलि का स्वयं अनुवाद न करते और उनके समर्थक यूरोप तथा अन्य पश्चिमी देशों में नहीं होते तो उन्हें यह पुरस्कार कभी न मिलता," यह इंगित करता है कि भारतीय हिन्दी साहित्यिक अकादमियों और सरकारों को यूरोप और अन्य पश्चिमी देशों में हिन्दी भाषा और लिपि के प्रचार.प्रसार के लिये इसके समर्थकों, पाठकों तथा समीक्षकों एवं अनुवादकों का समूह विकसित करने के लिए बहुत प्रयास करना होगा जिसका अभी शुभारम्भ भी नहीं हुआ है। केवल प्रवासी भारतीयों अथवा कतिपय यूरोप और पश्चिमी देशों के नागरिकों द्वारा हिन्दी के पठन.पाठन अथवा उनके द्वारा किन्हीं विशेष अवसरों पर हिन्दी में प्रस्तुति किसी कार्यक्रम अथवा उद्‌बोधन से अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में हमारे प्रतिनिधियों द्वारा हिन्दी में भाषण देने पर गर्व कर लेने मात्र से हमारे प्रेमचंद जी, प्रसाद जी, महादेवी वर्मा या बच्चन जी और नरेन्द्र कोहली अथवा भीष्म साहनी या नीरज जी जैसे अन्य कई मूर्धन्य साहित्यकारों को यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान मिलना अभी तक तो सम्भव हुआ ही नहीं है अगले कुछ दशकों तक भी सम्भव प्रतीत नहीं होता।

'नोबेल पुरस्कार विजेताओं की 51 कहानियाँ', सुरेन्द्र तिवारी, किताब घर प्रकाशन

---

कविताएँ

टीकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला'
घोटिया.बालोद, छत्तीसगढ़,
मोबाइल–9753269282

पानी
सत्रह बरस की
एक कोमलांगी किशोरी को
सर पर घड़े रखकर
पानी के लिए
टैंकर की भीड़ की ओर
जाती देखकर
लोगों की गड़ती नजरों का
ख्याल कर
भाई ने कहा – बहन!
मुझे दो अपने घड़े को
तुम घर लौट जाओ
क्योंकि
तुम अपने घड़े के पानी को
बचाने के चक्कर में
अपना पानी छलका डालोगी
हाँ बहन, मेरा कहना मान
तुम्हारा पानी तो
हम सबका पानी है।

प्रिया देवांगन 'प्रियू'
राजिम, जिला–गरियाबंद,
छत्तीसगढ़

यथार्थ
घट चाहे माटी का हो, मोती से जड़ित या हो
मदिरा के पात्र से तो, दुर्गंध ही आएगी
कितनी प्रशंसा करो, मीठे शब्द वाणी भरो
छद्म छवि कभी यहाँ, छुप नहीं पाएगी
मन छल द्वेष गढ़े, पीठ पीछे दोष मढ़े
प्रेम कड़ी एक दिन, टूट ही तो जाएगी
करो मत बुरा कर्म, अपनाओ सत्य धर्म
आत्मा को परमात्मा से, मिलन कराएगी
प्रतिदिन राम जप, नित ध्यान योग तप
जीवन जटिल बाधा, त्वरित मिटाएगी
उपजे आनंद सुख, हृदय से मिटे दुःख
त्याग भक्तिभाव से ही, मुक्ति मिल पाएगी।

पुष्पेश कुमार पुष्प
काजीचक, सवेरा सिनेमा चौक, बाढ़
मोबाइल–9135014901

आएगा बसंत
आएगा बसंत अपने भी वतन में
हर ओर फैलेगा खुशियों का चमन
प्यार की खुशबू से महकेगा अपना वतन
हर ओर होगा शांति
और भाईचारे का माहौल
नहीं होगा कहीं ईर्ष्या-द्वेष का माहौल
छोटे-बड़े का भेद मिटाकर
मदद के हाथ उठेंगे हर ओर
प्रेम-समर्पण का भाव होगा
कहीं नहीं होगा
अकर्मण्यता का माहौल
जाति-धर्म का भेद मिटाकर
शांति भाईचारे का मिसाल बनेगा
अपना वतन
ज्ञान कर्म से फिर
अपनी बुलंदियों को
छू लेगा अपना वतन
जिसके ज्ञान की गंगा में
गोते लगाएगी
दुनिया एक दिन।

आलेख

# चलते रहने का नाम जिंदगी है

मृत्युंजय कुमार मनोज
निराला एस्टेट, ग्रेटर नोएडा,
नोएडा (पश्चिम) उ.प्र.

चलते रहने का नाम ही जिंदगी है। जिनको जिंदगी से शिकायत है वे पूरी जिंदगी शिकायत ही करते रह जाते हैं। "कभी किसी को मुक्कमल जहाँ नहीं मिलता, कहीं जमीं तो कहीं आसमाँ नहीं मिलता।" मानव जीवन के सच को बयां करती ये पंक्तियाँ हमें पोजिटिव बने रहने और जीवन के हर पल को आनंद से जीने का मार्ग दिखाती है। मनुष्य जीवन कर्म.प्रधान है। कर्म का कोई विकल्प नहीं है, न ही हो सकता है। हाँ, हर व्यक्ति के कर्म करने का माध्यम और उद्देश्य अलग.अलग है। कोई दिमाग का इस्तेमाल ज्यादा करता है तो कोई शरीर का। किसी को नाम.शोहरत चाहिए तो किसी को खूब धन.दौलत और किसी को दोनों। लेकिन बिना मेहनत के जीवन में कोई भी सफलता नहीं मिलती है। परिस्थितियां कभी अनुकूल तो कभी प्रतिकूल कुछ भी हो सकती है क्योंकि मनुष्य का जीवन परिवार, दोस्त, पैसा, धर्म, जाति आदि कई कारकों पर निर्भर करता है और इतने कारकों पर हर पल नियंत्रण संभव नहीं है। लेकिन जिसने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हार नहीं मानी वही जीवन.समर में विजयी होता है और सिकंदर कहलाता है।

पूरी दुनिया ऐसी कहानियों से भरी पड़ी है जिन्होंने कर्म.पथ पर चलते हुए सबके लिए मिसाल पेश की। प्रसिद्ध मीडियाकर्मी ओपरा विन्फ्रे, प्रसिद्ध लेखिका जे. के. राउलिंग, एप्पल के फाउंडर स्टीव जॉब्स, अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, भारत रत्न अब्दुल कलाम, क्रिकेटर महेन्द्र सिंह धोनी, फिल्म एक्टर रजनीकांत जैसी शख्सियत कुछ उदाहरण मात्र हैं। इन सब ने अपने जीवन के सफर में आए विपरीत परिस्थितियों को अपने मार्ग का बाधक नहीं बनने दिया। उससे लड़े और सफल हुए। सभी सफल व्यक्ति की कहानी यह बताती है कि वे आत्मविश्वास से लवरेज थे। उन्होंने स्वयं पर भरोसा किया, मेहनत किया और कठिनाइयों से लड़ते हुए हर दिन अपने को बेहतर बनाने में लगे रहे। उन्होंने चुनौतियों को अवसर के रूप में लिया और समयानुकूल तकनीक, कौशल, बुद्धि.विवेक का इस्तेमाल करते हुए कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की।

मानव जीवन के संबंध में जब हम बात करते हैं तो कुछ तथ्यों पर गौर करना जरूरी है। पहला पृथ्वी पर हर मनुष्य की मृत्यु तय है और दूसरा हर व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के प्रकृति ने चौबीस घंटे दिए हैं। मानव जीवन की सफलता और असफलता की कहानी इसी चौबीस घंटे के इस्तेमाल करने की कहानी है।

व्यक्ति का जन्म कहाँ होगा, किस परिवार में होगा यह नियति तय करती है। जन्म के समय की सामाजिक, आर्थिक परिवेश पर मनुष्य का कोई नियंत्रण नहीं है। लेकिन उसके बाद की कहानी व्यक्ति स्वयं लिखता है। जो व्यक्ति अपने सामाजिक और आर्थिक हैसियत का रोना न रोकर उपलब्ध संसाधनों और समय का औप्टिमम इस्तेमाल करते हुए अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने में लगा रहता है वह जिंदगी को जीता भी है और जंग को जीतता भी है। जरूरी नहीं कि उसे मनचाही सफलता मिल ही जाए, लेकिन उन सपनों को पूरा करने का सफर व्यक्ति को अनुभवी, दृढ़निश्चयी और आत्मविश्वास से लवरेज करता है। ऐसा इंसान जीवन के हर पल का आनंद उठाता है।

गीता में कहा गया है कि कर्म करो लेकिन फल की इच्छा नहीं करो। मेरा मानना है कि यह सिद्धांत सुखी जीवन का सूत्र है। इसे ऐसे समझ सकते हैं कि जीवन गिफ्टेड है। अभी तक ऐसी कोई संस्था सरकारी या गैरसरकारी, तंत्र.मंत्र, टेक्नोलॉजी, दवा आदि नहीं बनी है जो हमारे जीवन की गारंटी दे सके। किसी भी व्यक्ति का कोई भी पल उसका आखिरी पल हो सकता है। एक रिपोर्ट के अनुसार पृथ्वी पर प्रति मिनट लगभग 105 व्यक्ति की मृत्यु होती है। स्वस्थ से लेकर बीमार सभी प्रकार के लोग हर पल जीवन की जंग हारते हैं। चूंकि हम मृत्युलोक जाने वाले हर व्यक्ति को नहीं जानते हैं इसलिए हमें अपने आसपास का जीवन बड़ा सामान्य लगता है। वस्तुतः अगर हम जीवित हैं तो वह चमत्कार है। इस चमत्कार करने वाले को ही लोग राम,कृष्ण, अल्लाह, नानक, बुद्ध आदि के नाम से पूजते हैं। घर से सुबह निकलकर शाम को सही सलामत घर लौटना, रात में सोने के बाद सुबह स्वयं के साथ सभी बंधु.बांधवों को नार्मल पाना ईश्वर का चमत्कार है। स्पष्ट है ऐसे अनिश्चित जीवन में कर्म ही एकमात्र विकल्प है जो आनंद दे सकता है और फल चूंकि कई कारकों पर निर्भर है इसलिए वह अनिश्चित है। इसीलिए फल की अनावश्यक चिंता नहीं करनी चाहिए। हर व्यक्ति अनंत संभावनाओं का स्रोत है। कला, साहित्य, विज्ञान, खेल कोई भी क्षेत्र हो, वहाँ कोई.न.कोई व्यक्ति ही अपनी प्रतिभा से नित्य नई ऊंचाइयों को छू रहा है। यदि हर व्यक्ति प्रत्येक दिन अपने ज्ञान, स्कील, टेक्नोलॉजी, व्यवहार को पिछले दिन की तुलना में ऐड ऑन करने की कोशिश करेगा तो निश्चित रूप से वह सफलता के नये आयाम को प्राप्त करेगा। इससे उसका जीवन तो सार्थक होगा ही, परिवार, समाज और राष्ट्र का भी उत्थान होगा। वैसे तरक्की का एक दूसरा रास्ता भी है जिसका इस्तेमाल आज के दौर में बढ़.चढ़कर किया जा रहा है। स्वयं को यथावत रखते हुए अपने संभावित कॉम्पिटीटर के मार्ग में बाधा पैदा कर उसे आगे बढ़ने से रोकने की कोशिश करना। लेकिन यह मार्ग न केवल जीवन को नकारात्मक विचारों से भर देता है बल्कि दूसरों को रोकने की कोशिश में बाकी दुनिया बहुत आगे निकल जाती है और वह स्वयं बीतते समय के साथ घोर कुंठा और अवसाद का शिकार हो जाता है क्योंकि जो उसे संभावित कॉम्पिटीटर दिख रहा होता है वह वस्तुतः उसकी ईर्ष्या और संकुचित सोच का परिणाम होता है। सच्चाई यह है कि दुनिया में हर समय कोई.न.कोई तुलनात्मक रूप से धन.दौलत, नाम.शोहरत में किसी दूसरे को पछाड़ रहा होता है लेकिन ऐसे हर व्यक्ति की पहचान करना संभव नहीं है।

बात पते की यह है कि जब जीवन का ही भरोसा नहीं है तो उस जीवन से जुड़ी सफलता.असफलता की गारंटी का प्रश्न अपने आप बेमानी हो जाता है। ऐसे में जीवन में आनंदित रहने का एकमात्र उपाय है अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए समर्पित होकर निरंतर सकारात्मक कर्म करते रहना। लक्ष्य प्राप्ति के सफर का आनंद उठाते हुए निरंतर प्रयत्नशील रहना। यदि लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो सफर दूसरों के लिए मिसाल बन जाती है अन्यथा वह सफर आपको और अधिक बेहतर और अनुभवी इंसान बना देती है। स्पष्ट है कि भाग्य की थ्योरी केवल शिकायत करने वाले लोगों का अस्त्र है। कर्म पर विश्वास करने वाले ज्यादा शिकायत किए बिना अपने पर भरोसा करते हुए निरंतर मेहनत करते रहते हैं। उनके लिए जिंदगी चलते रहने का नाम है।

आलेख

# सन्त कबीरदास की भक्ति

नमिता वैश्य
मसकनवा, गोण्डा, उत्तर प्रदेश
मोबाइल – 9997478210

कबीर हिंदी साहित्य की भक्तिकालीन साहित्य परंपरा के शिखर कवि हैं। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत कबीर का स्थान सर्वोपरि है। कबीर निर्गुण भक्ति काव्य धारा के ऐसे शिखर पुरुष थे जिनका प्रभाव संपूर्ण काव्य धारा पर परिलक्षित होता है। कबीर न केवल महान कवि थे बल्कि वे उच्च कोटि के समाज सुधारक थे। वे निर्गुण भक्ति के प्रबल प्रचारक तथा हिंदी संत काव्य के प्रतिनिधि कवि हैं। हिंदी संत काव्य धारा में उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान माना जाता है। कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। कबीर निर्गुण भक्ति के अनुयायी थे। भक्ति का अर्थ है भजना या भजन करना अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है। शंकराचार्य ने उत्कंठायुक्त निरंतर स्मृति को भक्ति कहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है, जब पूज्य भाव की वृद्धिके साथ श्रद्धा भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति उसकी सत्ता के कई रूपों से साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव होता है।" अतः स्पष्ट है कि भक्ति एक ऐसी भावना है जिसमें श्रद्धालु श्रद्धेय से निष्काम प्रेम करता है, निरंतर उसका स्मरण करता है, उसके सामीप्य लाभ की कामना करता है तथा उसके भजन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनंद का अनुभव करता हो।

हिंदी साहित्य की भक्ति काव्य धारा में दो काव्य धाराएं प्रमुख हैं – सगुण तथा निर्गुण भक्ति। कबीर निर्गुण काव्यधारा के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं, उनकी भक्ति भावना उच्च कोटि की है। वे भक्ति के मार्ग में व्याप्त आडंबरों का विरोध करते हुए सच्चे हृदय से ईश्वर के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं। गुरु रामानंद से दीक्षा प्राप्त कर कबीर ने वैविध्यपूर्ण भक्ति को समाज सुधार से जोड़ा। भक्ति को कबीर ने सद्धांतिक अवधारणाओं से निकालकर व्यावहारिक रूप प्रदान किया। उन्होंने मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा तथा अन्य धार्मिक स्थलों की महत्ता मानव से ऊपर नहीं बताई। मानवता को ही सर्वोपरि बताया। कबीर की भक्ति अद्वैतवादी भावना से प्रभावित थी तथा इस पर एकेश्वरवाद का भी प्रभाव था। कबीर एक ऐसी भक्ति धारा को प्रवाहित करना चाहते थे, जिसे सभी वर्गों एवं वर्णों के व्यक्ति बिना किसी संकोच के अपना सकें। उनकी भक्ति ने समाज को धर्म और धर्मनिरपेक्षता के महत्व को समझाया और लोगों को सामाजिक न्याय और इंसानियत के मूल्यों से परिचित कराया। कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति का आश्रय लेकर पारस्परिक कटुता तथा वैमनस्य की भावना को दूर करके एक ऐसी सामान्य भक्ति का प्रचार किया, जिसमें राम और रहीम, कृष्ण और करीम, महादेव और मोहम्मद की एकरूपता स्थापित करके एक ईश्वर की उपासना पर जोर दिया और ईश्वर की एकता के आधार पर मानव मात्र की एकता का प्रचार किया गया।

संत कबीर एक महान आध्यात्मिक गुरु थे, जिनकी भक्ति और उनके द्वारा प्रेरित उत्कृष्ट गीत आज भी लोगों को उनकी अद्वितीय विचारधारा के प्रति आकर्षित करते हैं। उनका जीवन और उनके द्वारा दिए गए उपदेश विशेष रूप से भक्ति और समाज के सम्मान को बढ़ावा देने पर केन्द्रित हैं। संत कबीर की भक्ति का एक प्रमुख गुण उनका निराकारवादी दृष्टिकोण था। उनका मानना था कि परमात्मा सभी धर्मो के अतीत में स्थित हैं और उनके भक्त बिना किसी मध्यस्थता के ही संभव है। उनके ग्रन्थों में भक्ति के माध्यम से मनुष्य को परमात्मा के साथ एकता की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया गया है। कबीर की भक्ति में निष्काम कर्म का महत्व भी था, उन्होंने कहा कि जीवन में कर्म करना महत्वपूर्ण है परंतु उसे निष्काम भाव से करना चाहिए। उन्होंने भक्ति के माध्यम से भगवान की प्राप्ति के लिए अपना जीवन समर्पित किया और लोगों को भी इसी मांग पर चलने की प्रेरणा दी। उनके गीतों और दोहों में आत्मज्ञान, सामाजिक समरसता, धर्मनिरपेक्षता और मानवता के महत्वपूर्ण संदेश हैं।

कबीर की रचनाओं में हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनकी रचनाएं सिखों के 'आदि ग्रंथ' में सम्मिलित की गई हैं। उनके जीवनकाल के दौरान हिंदू तथा मुसलमान दोनों ने उनका अनुसरण किया। कबीर पंथ नामक संप्रदाय उनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें मस्तमौला कहा है। कबीर की भाषा साधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी है, जिसमें हिंदी भाषा की सभी बोलियों जैसे राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा आदि के शब्द सम्मिलित हैं। कबीर के काव्य में भक्ति भावना के विभिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं।

गुरु की महत्ता :

कबीर ने बहुत ही व्यावहारिक तरीके से गुरु के महत्व या महिमा पर प्रकाश डाला है। उन्होंने कहा है कि गुरु गोविंद से भी बड़ा है, वे कहते हैं –

"गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।।"

अर्थात् गुरु ही हमें ईश्वर तक पहुँचाने के लिए मार्ग दिखाते हैं इसलिए यदि गुरु और गोविंद अर्थात् भगवान एक साथ हों तो उस समय हमें पहले गुरु को नमन करना चाहिए। कबीर के एक और पद से गुरु के महत्व को रेखांकित किया जा सकता है, वे कहते हैं –

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत हो उघाड़िया, अनंत दिखावण हार।।"

यहाँ बताया गया है कि गुरु ही उस अनंत, असीम, सचराचर सत्ता से व्यक्ति को मिलाता है अर्थात् गुरु हमें अज्ञान से प्रकाश की ओर लेकर जाता है।

ईश्वर नाम स्मरण की महत्ता :

निर्गुण भक्ति में ईश्वर के नाम स्मरण को अत्यधिक महत्व दिया गया है। सभी निर्गुण भक्त कवियों ने परमात्मा के नाम के महत्व पर बल दिया है, उन्होंने परमात्मा के नाम को ही ब्रह्म माना है। कबीर ईश्वर के रूप के स्थान पर उनके नाम के स्मरण को महत्व देते हैं। वे कहते हैं –

"माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुवा तो दस दिशि फिरे, सो तो सुमिरन नाहिं।।"

अर्थात् माला तो हाथ में फिरती है और जीभ मुख में फिरती है परंतु मन दसों दिशाओं में फिरता है, तो आवश्यक है कि हम मन से ईश्वर का स्मरण करें, वे कहते हैं कि चिल्लाने मात्र से भगवान प्राप्त नहीं होते, हम अपने मन में ही ईश्वर के नाम का स्मरण करें, दिखावा आवश्यक नहीं है। कबीर दिखावे का विरोध करते हैं।

आचरण की शुद्धता :

कबीर आचरण की शुद्धता पर बल देते हैं। वे माया मोह, कनक

कामिनी, काम, क्रोध, लोभ आदि को छोड़ते हुए विशुद्ध आचरण पर बल देते हैं। वे सज्जनों की संगति और दुर्जनों से दूरी रखने की बात करते हैं –

"'कबीर' संगति साध की, बेगी करीजै जाइ।
दूरमति दूर गंवाई सो, देसी सुमति बताइ।।"

अर्थात् साधु की संगत से ही मनुष्य की अज्ञानता दूर होती है। कबीर कुसंगति को बुरे आचरण का कारण मानते हैं। कुसंगति के कारण मनुष्य के मन में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार कुसंगति साधना में सबसे बड़ी बाधा है, जब व्यक्ति कुसंगति में रहता है, तब तक वह एकाग्रचित होकर प्रभु का स्मरण नहीं कर सकता, इसलिए कबीर ने कुसंगति के कुप्रभावों के साथ.साथ सत्संगति के महत्व पर भी प्रकाश डाला है। वे जीवन में सदाचार को महत्व देते हैं तथा प्रत्येक भक्त से सदाचार का पालन करने का आह्वान करते हैं। माया को वे सदाचारी मनुष्य बनने की राह में बाधा मानते हैं, इसीलिए सदाचार अपनाने के लिए वे साधु.संतों की संगति में रहने का परामर्श देते हैं।

निराकार ब्रह्म की उपासना :

कबीर निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल देते हैं। उनके अनुसार ईश्वर घट.घट वासी हैं, अर्थात् सर्वत्र व्याप्त हैं। निर्गुण निराकार हैं। उनकी उपासना पद्धति अद्वैतवाद से प्रभावित है। वे अवतारवाद का खंडन करते हैं। उनकी भक्ति त्रिगुणातीत है। उनके अनुसार इन तीन गुणों से ऊपर उठकर ही चौथे पद की प्राप्ति हो सकती है –

"राजस तामस, आतिम, तिन्यूं ये सब तेरी माया।
चौथे पद को जे जन चिन्हैं, तिनहि परम पद पाया।।"

इस प्रकार वे वेद.शास्त्रों में बताए गए भक्ति के मार्ग की अवहेलना करके ज्ञानमार्गी भक्ति की प्रतिष्ठा करते हैं। वे ईश्वर संबंधी भावना में एकता की स्थापना करते हुए एक निराकार ईश्वर की उपासना पर जोर देते हैं। उसे सर्वव्यापी, सर्वनियंता, सर्वोपरि तथा परात्पर ब्रह्म कहकर बुद्धि, मन एवं वाणी से सर्वथा अगम अगोचर बताते हैं तथा राम.रहीम, कृष्ण.करीम, राम.अल्लाह, बिस्मित.विश्वंभर आदि सबकी एकता स्थापित करते हुए परमात्मा की एकता पर जोर देते हैं। उन्होंने हिन्दुओं के बहुदेववाद तथा मुसलमानों के एकेश्वरवाद के विरुद्ध एक ईश्वर का प्रसार किया।

निष्काम भक्ति पर बल :

कबीर की भक्ति में प्रेम तत्व की प्रधानता है। प्रेम प्रधान भक्ति को कबीर ने भाव भगति या प्रेम भगति कहा है। शास्त्रीय दृष्टि से यह मूलतः नारदीय भक्ति पद्धति है, जिसमें उपास्य और उपासक के बीच अनन्य प्रेम होता है। कबीर भाव भक्ति को ही भवसागर से तरने का एकमात्र साधन मानते हैं –

"जब लगि भाउ भगति नहिं करिहौं
तब लगि भवसागर क्यों तरिहौं।।"

वे कहते हैं कि बिना प्रेम या भाव के भक्ति नहीं होती और भक्ति बिना भाव या प्रेम नहीं होती अर्थात् भाव और भक्ति एक ही रूप के दो नाम हैं क्योंकि दोनों का स्वभाव एक ही है –

"भाव बिना नहिं भक्ति जग, भक्ति बिना नहीं भाव।
भक्ति भाव एक रूप हैं, दोउ एक सुभाव।।"

उनके अनुसार भक्ति रूपी अमोलक वस्तु तभी मिलती है जब यथार्थ सतगुरु मिलें और उनका उपदेश प्राप्त हो। जो प्रेम.प्रीति से पूर्ण भक्ति है वह पुरुषार्थ रूपी पूर्ण भाग्योदय से मिलती है। कबीर की भक्ति भावना की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है – आत्मसमर्पण। वे कहते हैं – "मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।" उन्होंने अपनी प्रेम भावना को कहीं अधिक विस्तृत धरातल पर प्रस्तुत किया है। दांपत्य भावना के साथ–साथ अपनी प्रेम भावना को दास्य, पुत्र.पिता, पुत्र.माता आदि रूप में भी प्रतिष्ठित किया – "हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुन बकसहु मेरा।।"

परम सत्य की खोज :

कबीर सदा लोगों से स्वयं के भीतर झांकने के लिए कहते थे, वे कहते थे कि ईश्वर को कहीं बाहर न ढूंढें अपितु वे लोगों का उनके भीतर विद्यमान ईश्वरीय तत्व से परिचय कराते थे। यह कुछ अन्य नहीं अपितु अद्वैत दर्शन ही है जिसके अनुसार ब्रह्म आपके भीतर है तथा आप स्वयं ही ब्रह्म हैं। वे सदा लोगों को आगाह करते थे कि परम सत्य की खोज में बाहर ना भटकें, उसे अपने भीतर ही खोजें। यदि आपको परमात्मा में विश्वास है तो वह आपके भीतर ही विद्यमान है। कबीर की रचनाएं उनकी स्वयं के अनुभवों पर आधारित थीं, वे अपने दैनंदिन जीवन से ही दृष्टांत प्रस्तुत करते थे। वे हमें सहजता से जीने की प्रेरणा देते हैं, उनकी रचनाओं में सहजता, यह विषय बारंबार प्रकट होता है। यह सिद्धांत आज भी उतना ही प्रासंगिक है। हमें अपनी प्रवृत्ति में सहजता की आवश्यकता है। यह हमारे मन को स्वच्छ तथा जीवन को सरल बनाती है। वे कहते हैं कि मानवीय देह में ही सब कुछ समाया हुआ है, अच्छा, बुरा, कुरूप, सुंदर। यहां तक कि ईश्वर भी विद्यमान है –

"पोथी पढ़ि.पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।।"

बाह्य आडंबरों एवं कुरीतियों का विरोध :

कबीर ने भक्ति में प्रचलित आडंबरों व मिथ्या परंपराओं का बहिष्कार किया है। वे पूजा, तप आदि को मन बहलाने वाली गुड़िया का खेल मात्र समझते हैं। उन्होंने बस ईश्वर की एकता का पालन किया, मूर्ति पूजा के विचार का विरोध किया और भक्ति तथा सूफी विचारों में स्पष्ट विश्वास दिखाया, वे कहते हैं –

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार।।"

उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की तथा सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की। वे एक सर्वोच्च ईश्वर में विश्वास रखते थे। वे हिंदू समुदाय द्वारा थोपी गई जाति व्यवस्था के खिलाफ थे, उन्होंने केवल जाति ही नहीं, उन संस्कारों, रीति.रिवाज की भी आलोचना की जिन्हें वे व्यर्थ मानते थे।

भक्ति के साधन मार्ग :

उन्होंने अपनी रचनाओं में गुरु, सत्संग तथा मानव शरीर इन तीनों को ही भक्ति का प्रमुख साधन बताया है। गुरु साधक को विकार और संशयमुक्त करके उसे भक्ति का सही मार्ग दिखाता है। इसी प्रकार वे सत्संग को भी भक्ति का एक प्रमुख साधन मानते हैं। फिर कहते हैं –

"राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।

जो सुख साधु.संग में, सो बैकुंठ न होय।।"

अर्थात् साधु संगत में भक्त को जो आनंद प्राप्त होता है, वह बैकुंठ में भी नहीं मिल सकता। कबीर के अनुसार मानव जीवन दुर्लभ है, इसलिए मानव शरीर को विषय वासना में नष्ट नहीं करना चाहिए बल्कि इसे प्रभु भक्ति में समर्पित कर देना चाहिए क्योंकि मानव शरीर से ही भक्ति संभव है।

कबीर की भक्ति भावना के वर्णन, विश्लेषण तथा अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि उनकी भक्ति निष्काम भाव की है तथा निर्गुण ब्रह्म के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास प्रकट किया गया है। शुद्ध तथा सत्य आचरण पर बल दिया गया है, मूर्ति पूजा एवं अवतारवाद का खंडन करते हुए केवल नाम स्मरण द्वारा ब्रह्म से साक्षात्कार करने के लिए आग्रह किया गया है। कबीर की भक्ति में नवधा भक्ति का प्रत्येक रूप न्यूनाधिक मिलता है लेकिन मूलतः उनकी भक्ति ज्ञान, प्रेम और सदाचार पर आश्रित है। कबीर मात्र एक व्यक्तित्व न होते हुए एक बहती नदी की धारा के समान थे, उन्होंने एक विचारधारा आरंभ की थी, वे एक सिद्ध संत, स्वतंत्र विचारक, भक्त और कवि ही नहीं सच्चे मनुष्य प्रेमी थे। उनमें मनुष्यता की पुकार थी, वे मनुष्य में ईश्वर का वास समझते थे। उन्होंने माया पर विजय पायी और भूले.भटके मनुष्यों की दशा सुधारने का काम किया।

कबीर ने माधुर्य भाव की भक्ति को अपनाया है। उनकी भक्ति में सूफी कवियों जैसा माधुर्य भाव दृष्टिगोचर होता है। उनके द्वारा रचित साखी, सबद, रमैनी में कवित्व की शक्ति समाहित है। कबीर की साखियों में, पदों में निर्गुण, निराकार ब्रह्म के गुणों का ही वर्णन मिलता है। उनकी भक्ति व्यवहारिक जीवन की साधुता और सहजता से समन्वित भाव भक्ति है। कबीर की शिक्षा और दर्शन में सूफी प्रभाव भी काफी स्पष्ट है। उनके अनुसार प्रत्येक जीवन का संबंध दो आध्यात्मिक सिद्धांतों जीवात्मा और परमात्मा से है। मोक्ष के बारे में उनका विचार था कि यह इन दो दिव्य सिद्धांतों को एकजुट करने की प्रक्रिया है। कबीर को अपनी प्रभावशाली परंपराओं और संस्कृति के कारण पूरे विश्व में प्रसिद्धि मिली। उन्होंने एक सार्वभौमिक मार्ग देकर धर्मो का समन्वय करने का प्रयास किया, जिसका पालन सभी मनुष्यों द्वारा किया जा सके। कबीर की भक्ति भावना के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है – "कबीर दास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी और जिसका विकास स्वानुभूति का अवलंब पाकर हुआ था।"

कबीर की यह स्वानुभूति ही उनकी भक्ति में प्रेम और सदाचार का योग करती है।

## कविताएँ

सावित्री शर्मा 'सवि'
सुभाष रोड, देहरादून, उत्तराखंड
मोबाइल–9412006465

पयोधि ने पुकारा था
मुझे बहुत प्रिय है वो फूल
निहारा था तुमने जिन्हें
सुर्ख लाल गुलाब खिले
रुक कर सहलाया था जिन्हें
वो स्मृति पटल पे
बिखरे एहसास
मौन में लिपटे ये
भीगे एहसास
रखे हैं मन के कोटर में
कभी किसी पल दुलराया था जिन्हें
निहार प्रेम मुग्ध किया था
प्रणय निवेदन
आँखों में था मिलन आमंत्रण
रख हथेली पुष्प गुच्छ
भाव निर्झरनी एकाकार
आयी याद वीणा-सा झंकृत
किया था जिन्हें
विस्मृत नहीं कोई पल
आने को नूतन कल
कलियों का है गुंजार
है अनुपम भौंरा या
कली प्रेम उपहार
शैवालिनी-सी बही
किसी पल पयोधि बन
पुकारा था जिन्हें
सूखे नहीं समर्पण इनका
अमृत भरे नैनों से छलका
नर्म शीतल चाँदनी बिखरी
अरुणाभ क्षितिज तक
बिखरी सुवास
हाँ कभी प्रेम आराधना में
चढ़ाया था जिन्हें।

गिरेन्द्र सिंह भदौरिया 'प्राण'
इन्दौर

किस कारण साजन छाँह न की
स्थिति
पति साथ गयी नव दृश्य दिखा
सखि चौंक पड़ी पर आह न की
दुविधावश भूल गयी पति से
कुछ पूछ सकूँ फिर चाह न की
जब पूछ उठे पति ही तुम क्यों
अटकी मम ओर निगाह न की
वह बात बता अब प्राण अरी
तब मौन खुला परवाह न की

समस्या
फिर एक सवाल किया पति से
जब राह गयी अवगाहन की
यह जीवित आहत-सी लगती
असली मुझको तिय पाहन की
सिर ऊपर घाम चढ़ी फिर भी
पकड़े रसरी रथ वाहन की
सच प्राण कहो यह कौन खड़ी
किस कारण साजन छाँह न की

पूर्ति(उत्तर)
सुन प्रश्न जवाब दिया पति ने
वह नारी बनी प्रिय पाहन की
पकड़े कर में रसरी सजनी
रथ वाहक है पथ वाहन की
जब लू न लगे तन में तब क्या
सरदी-गरमी अवगाहन की
सिर ऊपर चुनर प्राण धरी
इस कारण साजन छाँह न की

आलेख

# वीरांगना भोगेश्वरी फुकनानी

ज्योत्सना अस्थाना
कदमा, जमशेदपुर
मोबाइल–9065237473

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राणों को न्योछावर करने वाली अनगिनत महिलाओं में से एक नाम असम की भोगेश्वरी फुकनानी का भी है। भले ही तत्कालीन इतिहासकारों ने इन्हें वह स्थान नहीं दिया परन्तु असम के लोकगाथाओं वाले लोकगीतों में इनका नाम आज भी जिन्दा है और वर्तमान समय में समाज के जागरूक व्यक्तियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के भूले–बिसरे वीरों और वीरांगनाओं पर जानकारी इकट्ठा कर हमारे बीच रखने का महत्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं। इस 70 वर्षीय वीरांगना ने राष्ट्रभक्ति और राष्ट्र प्रेम की एक ऐसी मिसाल कायम की जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। भोगेश्वरी फुकनानी ने यह सिद्ध कर दिया कि जोश और जज्बे के साथ साहसपूर्ण कार्यों को करने के लिए उम्र की कोई सीमा नहीं होती।इस वीरांगना ने भारतीय झंडे का अपमान करने वाले एक अंग्रेज अधिकारी की अपने हाथों में लिए झंडे के डंडे से पिटाई कर दी थी। उस अंग्रेज अधिकारी ने आक्रोशित होकर भोगेश्वरी फुकनानी पर गोली चला दी। इस 70 वर्षीय वीरांगना की शहादत ने लोगों में राष्ट्रप्रेम की भावना को इस तरह से बढ़ा दिया कि लोग अपने देश की आजादी के लिए कुछ भी करने को तैयार होने लगे।

भोगेश्वरी फुकनानी का जन्म सन् अठारह सौ पचासी (1885) में असम राज्य के नवगांव जिले के तोली गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम मलेश्वरी देवी था। चूँकि इनका जन्म असम के एक प्रसिद्ध पर्व 'भोगाली बिहू' के दिन हुआ था, इसलिए इनके माता.पिता ने इनका नाम बड़े प्यार से भोगेश्वरी रखा। यद्यपि भोगेश्वरी तीसरी कक्षा से ज्यादा पढ़ाई नहीं कर पायी थी परंतु इनमें सांगठनिक क्षमता बहुत अधिक थी। इन्होंने अपने प्रदेश की परंपरागत संस्कृति के अनुसार कपड़े बुनने में भी दक्षता हासिल की थी। इनका विवाह बहुत कम उम्र में ही भोगेश्वर फूकन नाम के व्यक्ति से हो गया था। अब इनके नाम के साथ फूकनानी जुड़ गया था। इनके छह बेटे और दो बेटियां हुई। इनका परिवार गाँधीजी के विचारों से बहुत प्रभावित था। गाँधीजी के एक आह्वान पर उनका पूरा परिवार विदेशी वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने लगा था। भोगेश्वरी देवी वास्तव में अपने देश से बहुत ही प्रेम करती थी इसलिए उन्होंने घर.परिवार के जिम्मेदारियों की उतनी परवाह न करके देश के स्वतंत्रता संग्राम में बढ़.चढ़कर हिस्सा लिया। 1930 के असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन में ब्रिटिश सरकार के विरोध में धरना देने और जुलूस में सक्रिय रूप से भाग लिया, जिसके कारण इन्हें कई बार गिरफ्तार भी किया गया। सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में संपूर्ण देश की जनता ने ब्रिटिश शासन को समाप्त करने का संकल्प लिया तो भोगेश्वरी फुकनानी ने भी इस यज्ञ में दुगुने उत्साह के साथ आगे बढ़कर न सिर्फ अपना योगदान दिया बल्कि अपने कस्बे की महिलाओं को देश की आजादी के लिए आगे आने के लिए प्रोत्साहित भी किया। इस दौरान भोगेश्वरी फुकनानी ने अपने प्रदेश में शांति वाहिनी के संगठन का कार्यभार संभालने का जिम्मा उठाया। उन्होंने बहरामपुर, बबजिया और पुजिया क्षेत्रों में सक्रिय होकर महिलाओं का 'शांति वाहिनी' के नाम से एक संगठन बनाया तथा उन्हें घर की चारदीवारी से बाहर लाने के लिए और आंदोलन में शामिल होने के लिए निरंतर प्रयास करती रहीं। 60 वर्ष की उम्र में भी इनका जोश, जज्बा, देश प्रेम और इनकी सक्रियता देख इनके क्षेत्र के पुरुष भी प्रेरित होकर इनके संगठन से जुड़ने लगे।इनके संगठन में 12 पुरुष और 500 महिला स्वयंसेवक थे।

इस शांति वाहिनी का मुख्यालय बहरामपुर में था।बहरामपुर में शांति वाहिनी का एक विशेष शिविर लगाया गया और एक रैली का आयोजन किया गया जिसका उद्देश्य लोगों को अनुशासित तरीके से स्वतंत्रता संग्राम चलाने का प्रशिक्षण देना था और भावी संघर्ष की रणनीति बनानी थी।

इस रैली की अध्यक्षता बहरामपुर जिले के कांग्रेस अध्यक्ष 'हलधर' जी कर रहे थे। इस अधिवेशन के बाद पूरे असम में अंग्रेजों के विरु) आंदोलन तेज हो गया। सभी राजकीय कार्यालयों पर स्वयंसेवक धरना देने लगे। आंदोलन के इस रूप को देखकर ब्रिटिश सरकार बौखला गई। उन्होंने शिविर के आयोजन को विफल करने के लिए शिविरों में गोलियां चलवाई जिससे हेमाराम बरा, हेमाराम पतार, गुनभिराम, तिलक ठेका, कोलाई कोच बरदलै जैसे देशभक्त स्वयंसेवक शहीद हो गए।

इनलोगों की शहादत के विरोध में शांतिवाहिनी ने 16 सितंबर 1942 को 'पंचवीर दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की। भोगेश्वरी फुकनानी ने नौगाँव में प्रभात फेरी और प्रार्थना सभा का आयोजन करने का निश्चय किया। अंग्रेजी सरकार को जब इस कार्यक्रम के विषय में पता चला तो वे लोग और अधिक क्रोधित हो गए। अंग्रेजों ने शांति वाहिनी के शिविरों के ऊपर छापेमारी करके उन्हें अपने अधिकार में ले लिया। अंग्रेज सिपाहियों की इस ज्यादती के विरोध में 18 सितंबर 1942 के दिन नौगांव में शांति वाहिनी के स्वयंसेवकों द्वारा हाथ में तिरंगा लेकर पुनः एक प्रभात फेरी निकाली गई जिसमें राष्ट्रभक्ति गीतों के साथ.साथ 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के नारे लगाए गए। प्रभात फेरी करने के बाद जब शांति वाहिनी के सभी सदस्य शिविर तक पहुँचे तो ममाईचंद्र अधिकारी द्वारा शिविर में तिरंगा झंडा फहराया गया। पूरा वातावरण वंदे मातरम् के नारों से गूंज रहा था। अचानक लोगों ने देखा कि ब्रिटिश सरकार के सिपाही शिविर स्थल तक पहुँचकर शिविर को चारों ओर से घेर लिया। प्रमुख नेता 'प्रताप शर्मा' जी को एक पुलिस अधिकारी ने घसीटते हुए ले जाकर अपनी गाड़ी में डाल दिया और शिविर में रखे सारे सामानों को तोड़.फोड़ कर बर्बाद कर दिया। कई स्वयंसेवकों एवं कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर थाने में ले जाकर लॉकअप में बंद कर दिया गया।

महिलाओं की टोली में सबसे आगे भोगेश्वरी फुकनानी की बेटी रत्नमाला हाथों में तिरंगा लिए हुए खड़ी थी ब्रिटिश अधिकारी फिनिश भारतीय महिलाओं के अपने देश प्रेम को देखकर चिढ़ गया। उसने रत्नमाला के हाथों से झंडा छीनने का प्रयास किया परंतु रत्नमाला ने अपने हाथ से झंडा नहीं छोड़ा। फिनिश रत्नमाला के इस व्यवहार को देखकर क्रोध से आँखें लाल करते हुए उसे धक्का दे दिया। रत्नमाला जमीन पर गिरती इससे पहले ही भागेश्वरी देवी ने उस झंडे को अपने हाथ में थाम लिया और इसी झंडे के डंडे से कैप्टन फिनिश पर जमकर प्रहार किया जिससे फिनिश की बन्दूक नीचे कीचड़ में गिर पड़ी। इस अप्रत्याशित घटना से वहाँ खड़े दूसरे अंग्रेजों के सैनिकों ने भोगेश्वरी देवी को चारों तरफ से घेर लिया।कैप्टन फिनिश ने अपनी बंदूक उठाई और भोगेश्वरी के ऊपर तान दिया। भोगेश्वरी अपने हाथों में तिरंगा लिए हुए वहाँ पर दृढ़तापूर्वक शान से खड़ी रही। भोगेश्वरी के देशभक्ति के इस गुरुर को कैप्टन फिनिश बर्दाश्त नहीं कर सका और उसने अपने बेइज्जती का बदला लेते हुए भोगेश्वरी पर गोली चला दी। गोली लगते ही वीरांगना भोगेश्वरी का रक्तरंजित शरीर नीचे जमीन पर गिरा लेकिन उसने तिरंगा को अपने हाथों से नहीं छोड़ा।

कैप्टन फिनिश की इस नृशंसता से वहाँ उपस्थित सभी स्वयंसेवकों में क्रोध भर गया। वे निहत्थे ही अंग्रेजी हुकूमत के सिपाहियों से जूझने लगे। अंग्रेजी सिपाहियों ने गोलियां बरसानी शुरु कर दी जिससे अफरा.तफरी मच गई। अनेक स्वयंसेवक घायल हुए और लखी हजारीका जैसे स्वयंसेवक के साथ अन्य दो स्वयंसेवक भी गोली लगने से शहीद हो गये।

घायल भोगेश्वरी फुकनानी को रघुनाथ नामक एक स्वयंसेवक ने अपने कंधे पर उठाकर दौड़ते हुए अस्पताल पहुँचाया। चिकित्सकों ने अथक परिश्रम कर उन्हें बचाने के लिए हर संभव प्रयत्न किया परंतु भोगेश्वरी फुकनानी को बचाया नहीं जा सका।इस महान वीरांगना ने 20 सितंबर 1942 को अपने प्राण त्याग दिए। अपनी मातृभूमि और अपने झंडे की रक्षा के लिए इस वीरांगना

ने अपना जीवन बलिदान कर दिया। शायद यह वही दिन था जिस दिन असम के तेजपुर थाने में झंडा फहराने के क्रम में मात्र 17 वर्ष की एक और वीरांगना कनक लता बरुआ शहीद हो गई थी। 70 वर्षीय भोगेश्वरी फुकनानी ने अपनी शहादत देकर देशभक्ति की उस ज्वाला को और भी प्रज्वलित कर दिया जो पहले से ही जनता के हृदय में धधक रही थी। इस महान वीरांगना को शत शत नमन।

सुभाष चन्द्र झा
पूर्व विशेष सचिव, बिहार प्रशासनिक सेवा,
मोबाइल – 9431208428

कविताएँ

1

मातृशक्ति को समर्पित
स्त्रीः सिम्फ़नी ऑफ ग्रेस
स्त्रीः एक चेहरे से कहीं ज्यादा
एक पवित्र शुद्ध जीवंत प्रेमकला
एक ऐसी स्थायी उपस्थिति
जिसे कोई कैनवास नहीं समेट सकता
एक ऐसा नाज़ुक भावप्रवण दिल
जो शुद्धतम प्रकाश प्रतिबिम्बित करता है
उसकी मौजूदगी जैसे –
समय के साथ बहती वसंती हवा
सुंदर, संतुलित, सौम्य शक्ति
निगाह में सदियां उड़ती हुई
गात में नृत्य, लालित्य की फुसफुसाहट
चांदनी आकाश जैसी चिरस्थायी
उसकी छाया में दिन रात में तब्दील हो जाते
एक रहस्य आकर्षण से लक़दक
एक अथाह गहराई नीली–सी
जिसमें दुनिया भ्रमण करती है
एक सार्थक प्रेम–पहेली
जिसे सुलझाने को दिल तरसता है
प्रकृति के हाथों रचित –
सबसे खूबसूरत प्रेम–कविता
उसके सार में समुद्र और ज़मीन
उसकी आँखें अनकही भाषा बोलती हैं
उसकी निगाह में भविष्य और अतीत
मुस्कान में सूरज की गर्म चमक
रेगिस्तान के जंगली इलाके में
खिला हुआ एक बेहद सुन्दर फूल
सबसे अंधेरे में एक ज्योतिपुंज
देह में बज़ती एक सिम्फ़नी
जीवन और प्रेम की एक धुन
गति में समय का आलिंगन
प्रकृति की कला की एक उत्कृष्ट कृति
हर मुस्कान में एक प्यास भरा दिल
क़दमों में दुनिया पनाह मांगती हुई
उसकी हँसी में सितारे उड़ान भरते हैं
हर क़दम पर एक अनकही–सी पा
नज़रों में प्यार की गरमाहट
सौंदर्य की एक अदृश्य लहर
उसके रहस्य में शुद्धता–पवित्रता
एक मासूम पाक़ चेहरा
जो सुबह की रोशनी को समेटे हुए है
धरती का एक अमूल्य उपहार
अपने आप में एक सम्पूर्ण परिचय।

2

स्त्री–देह जैसे
कनक चंपा की कली
दूर से ही स्मरण में भी
सुगंध से भर देती है
स्त्री–नयन
पहले भोर की दो ओस बूँदें
अछूती, ज्योतिमय
भीतर द्रवित
आसान नहीं है
स्त्री से प्रेम करना
स्पर्श करना होता है प्रेम में
स्त्री के हृदय, मन, आत्मा को
उसकी भावना, कल्पना, सपना को
मापना होता है ऊब–चुभ होकर
नर्गिसी आँखों की अथाह गहराई को
पढ़ना होता है सांगोपांग
उसके हावभाव, तनमन की आदिम भाषा को
सहेजना–समेटना–संभालना होता है
उसे नाज़ुक निरीह बच्चे की तरह
बन जाना होता है प्रेम में
उसके धड़कते हृदय का स्पन्दन
बार–बार आश्वस्त करना होता है
अपने सच्चे प्रेम के लिए
अटूट अविचल विश्वास का
कभी न टूटने–दरकने का
पढ़ना–लिखना होता है प्रेम में
उसके तनमन की रंगीन भाषा को
जो हर किसी के आगे वह खोलती नहीं
बनना पड़ता है वो भरोसा
जो हर किसी पर वो करती नहीं।

3

असाधारण स्त्री भी प्रेम में
हो जाती है निरीह–पालतू
भूल जाती है अपनी उम्र
अपना सारा स्त्रैण अस्तित्व
उसे पसंद आती है
प्रेमी की वनैली कामना
प्रेमरात्रि के अंतिम प्रहर में
स्पर्श से हो जाती है पूर्ण–संपूर्ण
इतनी मुक्त होती है कि –
उसे बांधना, उसे खो देना है
वह इतनी बंधी होती है कि
वह चाहती है उसकी हर सांस पर
अंकित हो उसके प्रेमी का नाम
प्रेम करती स्त्री नहीं चाहती
ज्ञानी, विद्वान, घमंडी प्रेमी
उसे पसंद है स्नेही, उदार हृदय
जो जानता है प्रेम में झुकना
प्रेम में डूबी स्त्री
अलसायी लाजभरी धरती पर
ओस की स्निग्ध बूंद होती है
बाट जोहती हुई
सूर्य की प्रथम किरण के
अछूते प्रथम स्पर्श की
स्त्री के लिए लौटता है प्रेम
पहली बारिश में
भीगे पत्तों से बाहर आती
ठंडी बसंती हवा के साथ
अदृश्य रूप से हवा के साथ बहती
स्त्री हमेशा प्रेमातुर होती है
स्त्री जिससे प्रेम करती है
मात्र उसी से प्रेम करती है
वह प्रेम में देती है –
अनुमति और स्वीकृति
न में हाँ के संकेत
स्त्री के लिए
प्रेम और काम
चारों धाम होता है
उसे प्रेम किये जाने की
अंतहीन जरूरत होती है
हमेशा चाहती है कि
कोई उसे प्यार करे
स्त्री के लिए प्रेम में
अंतिम कुछ नहीं होता
चाहती है प्रेम में प्रेमी पाप करे
और अपनी विस्मृत स्मृति से करे
जीवित करे कोई अवशेष प्रेम का
एक मृतप्राय ईश्वर हो जाये।

4

स्त्री एक सृष्टि है
स्वयं ही प्रेम का प्रतीक है
उसके बिना कुछ भी पूर्ण नहीं
स्त्री से प्रेम करना
मिश्री को मीठा करने जैसा
मुश्किल काम है
क्या गुड़ को मीठा किया जा सकता है
आपादमस्तक प्रेम में डूबी स्त्री
नवजात शिशु जैसी होती है
जो अपने सच्चे प्रेमी पर
आँखें बंद कर भरोसा करती है
उसे साथ में सोने से ज्यादा
रात भर जागना पसंद होता है
स्त्री कभी उदासीन नहीं होती –
प्रेम और सौंदर्य के प्रति
प्रेम में स्त्री
अधिक काल्पनिक भावुक होती है
उसके लिए प्रेम का अर्थ है
कोई उसे टूट कर प्रेम करे
प्रेम में स्त्री
सिर्फ देती है, लेती कुछ भी नहीं
चूके हुए स्पर्श को भी
अपनी देह पर महसूस कर लेती है
प्रेम से कभी खाली नहीं होती।

5

स्त्री के लिए लौटता है प्रेम
रात की मादक याद बनकर
बरसात के भीगे मौसम में
खिड़की से आते तेज झोकों के बीच
प्रेम छू लेता है उसका चेहरा
एक रसभरी बूंद बन कर
पहली कुंआरी छुअन की तरह
सिहरन बन दौड़ता है तेजी से
उसकी संपूर्ण देहयष्टि में
ले जाता है अपने साथ
स्मृतियों की पगडंडी पर
उल्टे पांव
स्त्री का प्रेम
नहीं लौटता सीधे दरवाजे से
सीधी सपाट चाल से
वह लौटता है
प्रेमिल अस्मिल स्मृतियों में
हौले–हौले, खाली पांव
निः शब्द
जैसे बिल्ली घुस आती है खिड़की से
या छत की सीढ़ियों से अचानक
सारी उम्र पीछा करता है प्रेम स्त्री का ।

आलेख

# गुणात्मक सुधार और पुनर्मूल्यांकन की महती आवश्यकता

ज्ञानीचोर
रघुनाथगढ़, सीकर, राजस्थान
मोबाइल – 9001321438

शिक्षा मन के विचारों की अभिव्यक्ति को यांत्रिक या व्यवहारिक रूप से सामाजिक पृष्ठभूमि प्रदान करने का सशक्त माध्यम है। शिक्षा एक प्रणाली है। शिक्षा स्वयं से संचार करना सिखाती है। बाह्य संसार में विचारों को मूर्त रूप प्रदान करना शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रयोजन है। जैसे बिना नाथ के बैल, बिना लगाम के घोड़ा, बिना अंकुश के हाथी से कोई इच्छित प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकते वैसे ही बिना शिक्षा के मनुष्य समाज की महत्वपूर्ण अभिलाषा तो क्या, स्वयं के जीवन के प्रयोजन को सिद्ध नहीं कर पाता। शिक्षा मनुष्य के जीवन स्तर में सुधार ही नहीं लाती बल्कि मनुष्य के सृष्टि में होने के प्रयोजन को भी सिद्ध करती है। जब से शिक्षा की प्रणाली का विकास हुआ है तब से लेकर आज तक शैक्षिक स्वरूप में काल की सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, राजनैतिक, वैश्विक स्थितियों के कारण परिवर्तन होता आया है। यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहनी चाहिए।

शिक्षा के सम्बन्ध में विद्वानों की विचारधारा और सरकारों के मत में विरोध होता रहा है। वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण भी शिक्षा प्रभावित होती रही है। वर्तमान में नई शिक्षा नीति 2020 में अनेक परिवर्तन किए गए हैं। सरकारी रिपोर्ट और एक्सपर्ट इसे क्रांतिकारी कदम बता रहे हैं, हो सकता है यह सरकारी थिंक टैंक की एक तिकड़म बाजी हो। भारत की शिक्षा के लिए वैश्विक शैक्षिक संरचना और बौद्धिकता में पिछड़े नहीं। इसका परिणाम क्या होगा ये तो समय ही बतायेगा। परन्तु इतना तय है कि वैश्विक शैक्षिक स्तर के अनुरूप शिक्षा में बदलाव हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता के लिए कष्टदायक और विनाशकारी साबित होगा।

हमें अपनी शिक्षा प्रणाली को यहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल विकसित करना चाहिए। पुरातन शिक्षा और आधुनिकता में समन्वय बिठाना चाहिए। इतिहास की ऐतिहासिक घटना का आज के समाज पर प्रभाव है किंतु वो प्रभाव हम जीवित रखकर क्या हासिल कर लेंगे। मानवोचित उपलब्धि मनुष्य के चरित्र का उत्कर्ष बढ़ाने वाले गुण हैं। विज्ञान के अनुसंधान आज की महत्वपूर्ण आवश्यकता हैं किंतु प्राचीन ज्ञान की प्रासंगिकता को जानबूझकर मिटा देना स्वस्थ धारा कैसे हो सकती है?

अध्ययन की सुविधा के आधार पर विज्ञान की अनेक शाखाएं हो गई। किंतु व्यवहारिक प्रयोग सिखाना और समाज में प्रयोग करना नहीं सिखाते। बायोलॉजी के बच्चे को ये सीखा दिया जाता है कि इस पौधे का वैज्ञानिक नाम क्या है, इसकी कैसी संरचना है, इसके तत्व कौन से हैं, लगभग यही बात सभी शाखाओं में होती है लेकिन वृक्षायुर्वेद/आयुर्वेद को इसके साथ जोड़ने में क्या परेशानी है? आयुर्वेद एक अलग विषय है ये मानकर ज्ञान के विभेदीकरण की विनाशकारी प्रक्रिया अपना ली हमने। ऐसी कई भूलें हमारी शिक्षा पद्धति में हैं जिसे हम प्रगतिशील शिक्षा नहीं कह सकते।

शिक्षा में निजीकरण करना शिक्षा को आत्महत्या के लिए उकसाना और शिक्षकों को मृत्युदंड देना है। शिक्षा को सेवा क्षेत्र में रखने की बजाय व्यवसाय वाले क्षेत्र में जोड़ देना चाहिए सरकार को, हम विरोध नहीं करेंगे। शिक्षक बंधुआ मजदूर बनेगा तो भी विरोध नहीं करेंगे? क्यों करेंगे विरोध बताओ, वेतन बढ़ाने के लिए, शोषण का विरोध करने, मान.सम्मान के लिए, मान.सम्मान बचा ही कहाँ है शिक्षकों का अब, सरकारें मोटा पैसा लेती है निजी स्कूल संचालकों से तो उनसे बेवफाई क्यों करेगी। लोगों के पास पैसा है इसलिए पढ़ा रहे हैं, पढ़ाओ, खूब पढ़े हमारे देश का भविष्य, दूधो नहाओ पूतो फलो। फीस निर्धारित करने वाली स्कूली स्तर पर कमेटी का कागजों में कब्रगाह बना हुआ है। निजी शिक्षकों का कोई भविष्य नहीं है। सरकार कभी नहीं सोचती है इस बारे में।

सरकारी अध्यापकों का संगठन है, निजी स्कूलों का संगठन है। अपनी मांगों के लिए सरकार को झुका देते हैं परन्तु निजी स्कूल के शिक्षकों का कोई सक्रिय संगठन नहीं है। व्हाट्सएप ग्रुप संचालक मित्रों, हारे के सहारे आप ही हैं, राम जी तो हैं ही इस जगत में सुमिरन के लिए। आपके ही भरोसे बैठे हैं आप ही हमारे माई.बाप हैं आप कृपा बनाये रखना। सरकार की निजी शिक्षकों के प्रति अनदेखी क्रूरतापूर्ण है, वैसा ही कृत्य है जैसे किसी सांड को चारदीवारी में खुला छोड़कर व्यक्ति से कह दिया जाए उसमें धकेलकर कि अपनी रक्षा खुद करो। हाल ही में राजस्थान के शिक्षा मंत्री श्रीमान मदन दिलावर का वक्तव्य सामने आया, उन्होने कहा कि सरकारी और निजी स्कूलों की यूनिफॉर्म द्धविद्यार्थियों की गणवेशऋ एक समान होगी। हो जाये तो सबसे अच्छी बात है पर क्या निजी स्कूल संचालक इस बात के प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे। आप ये लागू कर सकेंगे। विचार अच्छा है।

शिक्षा में अपेक्षित सुधार बिन्दु :

- आयुर्वेद की वनौषधि चिकित्सा विज्ञान को कक्षा 9.10 की विज्ञान, 11.12 की बायोलॉजी में जोड़े जिसमें बच्चे अपने परिवेश के पेड़.पौधों, जड़ी.बूटी के महत्व को समझ सके, उनका प्रयोग शरीर के सामान्य रोगों के इलाज के लिए कर सके, प्रकृति संरक्षण भी होगा, आर्थिक बचत भी होगी।
- प्रत्येक उच्च माध्यमिक विद्यालय में आयुर्वेद चिकित्सक की नियुक्ति हो जो पेड़.पौधों के आयुर्वेदिक उपाय से रोगों के निदान और चिकित्सा पद्धति सिखाए, जिससे शहरों में रोगियों के दबाव को हटाया जा सके और गरीबों को आर्थिक मदद मिले।
- विज्ञान, कला, वाणिज्य संकाय के विषयों में व्यवहारिक प्रकरण जोड़े जो प्रयोज्य हो। इतिहास की घटनाओं के इतिवृत्त के स्थान पर उसकी प्रासंगिकता व प्रभाव को वर्तमान समाज से जोड़े।
- मस्तिष्क के विकास के लिए व समझ विकसित करने के लिए स्कूली स्तर पर भ्रमण कक्षा की व्यवस्था।
- प्रत्येक स्कूल में सिनेमा हॉल बनाये जिसमें प्रति सप्ताह एक कालांश हास्य कार्यक्रम दिखाने की व्यवस्था हो जिससे मस्तिष्क में ताजगी बनी रहे।
- प्रत्येक अध्यापक को खाली कालांश में शयनकक्ष की सुविधा हो ताकि स्फूर्ति बनी रहे। अध्यापक को शिक्षण.कार्य के अलावा सभी कार्यों से मुक्त रखा जाय। प्रबंधन के कार्य न कराये जाएं, प्रबंध व प्रशासन के लिए अन्य कर्मियों की नियुक्ति हो।
- निजी स्कूलों के लिए सरकारें अलग से एक आयोग स्थापित कर निजी शिक्षकों को नियुक्ति, वेतन.भत्ते दे। वेतन स्कूल संचालक

स्वयं न देकर आयोग के माध्यम से वेतन मिले। बारहमासी रोजगार मिले। हटाने के उचित कारण होने पर आयोग कार्यवाही करे। आयोग के माध्यम से ही शिक्षकों की नियुक्ति हो।

– निजी स्कूलों के शिक्षकों को सरकारी स्कूल शिक्षक जैसी सुविधाएं व मान.सम्मान मिले, वैसा ही प्रशिक्षण हो।

– राजकीय व निजी सभी श्रेणी के विद्यालयों की यूनिफॉर्म समान हो। यूनिफॉर्म पर स्कूल का लोगो व नाम न हो। न ही स्कूल बैग पर स्कूल का विज्ञापन हो। बच्चों को विज्ञापन का माध्यम बनने न दें। स्कूल अपने आई डी कार्ड के सिवा कुछ भी न दे। वह आई कार्ड आधार अप्रूव्ड हो तथा उसकी वैधता तब तक हो जब बच्चा संबंधित विद्यालय में पढ़े।

– निजी स्कूलों में डमी बच्चों का कारोबार बढ़ रहा है इस पर सख्ती करें। बायोमेट्रिक अटेंडेंस की व्यवस्था हो।

– विद्यालय में मोबाइल उपयोग पर पाबंदी हो। विद्यालय फोन उपयोग करे। डिजिटल कक्षा निर्माण। प्रत्येक ग्राम में आवासीय विद्यालय। जीवन कौशल को अनिवार्य विषय बनाये।

– प्राचीन भारतीय शिक्षा शास्त्र को अपनाये। वेद, वेदांग, दर्शन शास्त्र का अध्ययन। मन विकास व अध्ययन की भारतीय पद्धति को अपनाये। अष्टांग योग का अध्ययन।

हॉटलाइन मासिक पत्रिका, डॉ. अखिलेश सिंह, दिल्ली

## कविताएँ

कविता
डॉ. पुष्पलता
मुजफ्फरनगर,
मोबाइल–6205575443

1

आँसू के मिस क्यों ढलता है
ओ मेरे सुकुमार सपन
इन पलकों में क्यों पलता है
ओ मेरे सुकुमार सपन
लब पर इठलाता आँखों में
शरमा.शरमा जाता है
बार.बार यूँ क्यों छलता है
ओ मेरे सुकुमार सपन
खुलती है जब नींद उनींदा
सुस्ताया सा लगता है
शाम ढले अपने घर में
पीकर आया सा लगता है
खाली प्याले देख.देख कर
ठंढी आहें भरता है
बहक.बहक कर क्यों चलता है
ओ मेरे सुकुमार सपन
चढ़ती है जब धूप तो जलकर
अंगारा सा होता है
ढलती है जब तो लगता है
जैसे सूरज रोता है
देख चाँद को शरमाकर
क्यों ठंढा सा हो जाता है
देख दूसरों को जलता है
ओ मेरे सुकुमार सपन
ले निश्छल मुस्कान खड़ा
दर्पण सम्मुख मुस्काता है
एक नैनों का मधुर बाण से
नील गगन उड़ जाता है
पानी.पानी हो पल में मैं
नैनों में भर जाती हूँ
लाली गालों पर मलता है
ओ मेरे सुकुमार सपन

2

गर्म इस धूप में सर्द सी टालियाँ
हिल रही शाख के कान की बालियाँ
झूमती.झूमती सी हवा उड़ चली
धूप भी अब कहे मैं चली मैं चली
घुल रहा है गगन बाल बच्चे मगन
छांव तक जा रही रूप की लालियाँ
घाघरा है हरा है धरा ज्यों परी
बूटा.बूटा खिला पत्तियाँ मरमरी
आसमानी चुनर फूल मोटे जरी
मुस्कुराती हुई वृक्ष की डालियाँ
दिन हुए गर्म से रात है सर्द सी
झड़ गई धुल गई नीर से गर्द सी
फाग छाने लगा, राग गाने लगी
कान में सुन रही गीत की टालियाँ
देर से सो रहीं जल्द से उठ रहीं
महफिलें चल पड़ी भीड़ फिर जुट रही
तितलियां ले रहीं रंग से कुछ नए
अब बदलने लगी नींद की पालियाँ

3

जी करता है धूप सकेरूँ
आसमान में दिन भर तैरुँ
मुट्ठी में सूरज को पकडूँ
बाहों में बादल को हेरूँ
सुबह.सुबह जब मैं अलसाऊँ
तेरे शाने पर इठलाऊँ
माथे पर जो फूल उकेरो
उन हाथों पर खुशबू फेरूँ
जब शीशे के सम्मुख आऊँ
आँखों के सतरंग उगाऊँ
एक नया सा चित्र बनाकर
उस पर अपनी रिदम उकेरूँ
भावों से मोती चुन.चुनकर
तेरे उर का हार बनाऊँ
तेरी मूरत को पहनाकर
साथ तुम्हारे भाँवर फेरूँ

4

बदरी के संग लिपट रहा है
सांवरिया घन छम.छम बारिश
शर्म से सूरज पलट रहा है
सांवरिया घन छम.छम बारिश
पत्ते पत्ते बूटे बूटे
नहा रहे हैं खेत बाग वन
गागरिया सी उलट रहा है
सांवरिया घन छम.छम बारिश
धुला.धुला सा मन आँगन है
धुला.धुला तन छत दीवारें
घुला.घुला नभ चमक रहा है
सांवरिया घन छम.छम बारिश
युगों.युगों से बदरी प्यासी
सदियों से प्यासा बादल मन
प्यास बुझाता भटक रहा है
सांवरिया घन छम.छम बारिश
मदिर.मदिर सी हवा बही है
मृदुल.मृदुल सा हुआ है मौसम
प्यास बुझाता भटक रहा है
सांवरिया घन छम.छम बारिश
मदिर.मदिर सी हवा बही है
मृदुल.मृदुल सा हुआ है मौसम
कौन दिशा में अटक रहा है
सांवरिया घन छम.छम बारिश।

चिन्तन

# राष्ट्रवाद के प्रस्तोता : डॉ. पशुपति नाथ

डॉ. अवन्तिका शर्मा
भारती नगर, मेरिस रोड,
अलीगढ़, उ. प्र.
मोबाइल – 7972886806

भारतराष्ट्र का बाह्य स्वरूप वैविध्यपूर्ण होते हुए भी राष्ट्र का अन्तर्भूत ताना. बाना समरस है, एक रस है। एकात्म स्वरूप को स्थायित्व प्रदान करने हेतु भारतीय चिंतकों, शिक्षाविदों, साहित्यकारों, शिक्षाशास्त्रियों, दार्शनिकों एवं राष्ट्रभक्त धर्मगुरुओं ने कठोर तपश्चर्या की है, तपसाधना की है। इन्हीं राष्ट्रवादी साहित्यचिंतकों में एक नाम डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय का भी बड़े सम्मान से लिया जाता है, जिन्होंने अस्सी के दशक से ही अनवरत राष्ट्रवादी प्रस्तोता के रूप में साहित्यिक सेवाएँ दी हैं। भारतीय दर्शन वस्तुतः समतावादी दर्शन है, जिसके मूल में समता, ममता, परहितचिंतन, परपीड़ाचिंतन आदि की आध्यात्मिक शक्ति है। समानता वास्तव में समरसता से ही उत्पन्न होती है क्योंकि प्रत्येक घर.परिवार में विविधता, मतभिन्नता आदि के होते हुए भी समरसता देखी गई है, समानता देखी जा रही है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति जो सनातनी संस्कृति है, हिन्दू संस्कृति है, वह वैश्विक समरसतावादी संस्कृति है, समतावादी संस्कृति है एवं समन्वयवादी संस्कृति है।

वस्तुतः सामाजिक एकात्मकता राष्ट्रोन्नति का परिचायक एवं राष्ट्रोत्थान का द्योतक है। गोस्वामीजी ने इसे 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' कहकर सम्बोधित किया है। महात्मा गाँधी, डॉ. अम्बेडकर, बद्ध आदि के राष्ट्रवादी विचारों में समरसता का ही भाव देखने को मिलता है। भारतीय संविधान में कहा गया है कि "भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करे एवं हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे व उसका परिरक्षण करे।" भारतीय समाज में सदैव विविधताएँ और विभिन्नताएँ रही हैं फिर भी समरसता की भावना का विकास होता रहा है। सनातन परम्पराओं को सुरक्षित रखने हेतु राष्ट्रवादी चिंतक साहित्यकार डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय ने प्रस्तोता के रूप में सम्प्रति अपने लेखन द्वारा, भूमिका निर्वहन कर रहे हैं। सनातन धर्म की मूल परम्परा सामंजस्यवादी एवं समन्वयवादी रही है। समभाव अर्थात् समान भाव से मानव जीवन यापन करना ही समरस जीवनयापन करना है, जिसका संबंध सामाजिक समरसता से है।

राष्ट्रवादी प्रस्तोताओं में स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, गाँधीजी, दयानन्द सरस्वती, जयशंकर प्रसाद, दिनकर, प्रेमचन्द, डॉ. पशुपति नाथ आदि ने समय.समय पर विश्वबन्धुत्व के विकास पर वक्तव्य दिए हैं ताकि सामाजिक समरसता बनी रहे, जिसके मूल में आध्यात्मिक और मानवतावादी दृष्टि का उन्मेष है। मानव समाज में एक.दूसरे से समरस संबंध स्थापित कर आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त हो सकती है, जिससे संस्कृतियों का आदान.प्रदान किया जा सकता है। उपाध्याय जी का मानना है कि सामाजिक समरसता तभी बन सकती है, जब समाज में, राष्ट्र में संतुलन का भाव हो, सामंजस्य हो, समन्वय हो। वे शिक्षाशास्त्री ओटावे के विचार से सहमत हैं कि शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को उसके तरुण और समर्थ सदस्यों को हस्तान्तरित करना चाहिए। सामाजिक समरसता के लिए वे सामाजिक नियंत्रण को भी आवश्यक मानते हैं।

डॉ. उपाध्याय एक राष्ट्रवादी चिंतक और प्रस्तोता हैं। वे सामाजिक समरसता के लिए सामाजिक प्रथाओं, परम्पराओं, जनरीतियों, लोकाचारों, नैतिक मूल्यों, धार्मिक भावनाओं, सांस्कृतिक प्रतिमानों के साथ.साथ राज्य और राष्ट्र के कानून, प्रचार.प्रसार माध्यमों, समाजसेवियों, साहित्यकारों आदि को इस पुनीत कार्य हेतु जनमानस को जागृत किया जा सके। डॉसन व गोटिस के इस कथन से भी उपाध्याय जी सहमत हैं कि सांस्कृतिक परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है क्योंकि समस्त संस्कृति अपनी उत्पत्ति, अर्थ तथा प्रयोगों में सामाजिक है। मैकाइवर के इस विचार से भी उपाध्याय जी सहमत हैं कि सामाजिक समरसता बनती है, सामाजिक नियंत्रण से। इससे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में एकता बनी रहती है। 'राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समरसता' निबंध में उपाध्याय जी ने लिखा है कि 'इसके लिए देश की बदलती हुई परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए नई संभावनाएँ तलाश करनी होंगी। नई.नई व्यवस्था की निर्मिति करनी होगी, समाज के सभी वर्गों, सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करना होगा, सांस्कृतिक संरक्षण को मद्देनजर रखना होगा तथा उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा।

सामाजिक समरसता से अभिप्राय समरस समाज की स्थापना है, जिसका सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीयता एवं युगीन संस्कृति से है। सहिष्णुता, सहनशीलता, शालीनता, अनुशासनप्रियता आदि की प्रवृत्तियाँ राष्ट्रवादी भावना के लिए आवश्यक है। उपाध्याय जी का मानना है कि भावात्मक राष्ट्रीय एकता हेतु सामाजिक जागृति अभियान को आंदोलन के रूप में चलाना होगा। सर्वोदय की भावना जनमानस में भरनी होगी। राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति में समाज के सभी वर्गों के व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक है। डॉ. उपाध्याय समाज, धर्म और राष्ट्रधर्म को पर्याय रूप में प्रयोग करते हैं। दोनों ही राष्ट्र शुभैषी हैं। दोनों का धर्म समाज कल्याण और राष्ट्र कल्याण है। दोनों की निष्ठा मानवीय मूल्यों और जीवनादर्शों में निहित है। राष्ट्रवाद के प्रस्तोता डॉ. उपाध्याय भारत की अपनी वैभवशाली सांस्कृतिक परम्परा एवं सुदृढ़ धार्मिक परम्परा को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हैं।

वैश्विक मानव समाज में भारतीय राष्ट्रवाद का आज अप्रतिम स्थान बन गया है, क्योंकि भारतीयों के जीवन में धर्म की महत्ता स्वीकार की गई है। भारतीय राष्ट्रवाद राष्ट्र के जीवन में सत्य, सद्भाव, मैत्री, शान्ति, सहानुभूति, सहयोग, त्याग, परोपकार आदि का समाहार दिखाई पड़ता है। राष्ट्र के प्रति अखण्ड आस्था और निष्ठा की भावना ही उपाध्याय जी का राष्ट्रवाद है। भारत समाज, धर्म और राष्ट्रधर्म को प्राणतत्व के रूप में मान्यता प्रदान करता है। भारत भूमि की गौरवशाली परम्पराओं, आध्यात्मिक विश्वासों, सामाजिक मान्यताओं एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्यों ने अनेक उथल.पुथल के बावजूद भारतीय अखण्डता एवं एकता को कायम बनाए रखा है। उपाध्याय जी का विश्वास इसी राष्ट्रधर्म और समाज धर्म में है। उन्होंने ही स्पष्ट उल्लेख किया है कि "भारत का समाज धर्म वह सोपान है, जो राष्ट्र धर्म के शिखर तक पहुँचने में प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करता है। चूँकि भारतवासी अपनी सादगीपूर्ण आस्थाओं, विश्वासों, अवधारणाओं, धार्मिक आचरणों एवं व्यवहारों में विशुद्ध आध्यात्मिक मूल्यों और धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति समर्पित रहते हैं, इसलिए वे घोर आस्तिक, सात्विक एवं ईश्वरीय सर्वोच्च सत्ता में भी विश्वास रखते हैं।"

भारत में धर्म के स्वरूप का, जो रूप देखने को मिलता है, उसे हम मानव धर्म कहते हैं। धर्म एक आध्यात्मिक रहस्यात्मक प्रक्रिया है। उपाध्याय जी का मानना है कि धर्म भारत का प्राण तत्त्व है। धर्म ही विश्व की प्रतिष्ठा है, जिसमें

सब कुछ प्रतिष्ठित है। धर्म ही व्यक्ति और समाज को संयमित और नियंत्रित करता है। धर्म से ही लोक जीवन का अभ्युदय एवं विकास सम्भव है। उपाध्याय जी धर्म को वह नियामक और विधायक तत्त्व मानते हैं, जो मानव को सामाजिक और नैतिक मान्यताएं सिखाता है। भारतीय तत्त्ववेत्ता चिन्तकों ने वसुधैव कुटुम्बकम् में ही सर्व धर्म समभाव की झलक देखी है। भारतीय जीवन दर्शन जीवन के उच्च मूल्यों को महत्व देता है, जिसमें सत्य, अहिंसा, शील, सदाचार, सहानुभूति आदि की महत्ता स्वीकार की गई है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने सर्वधर्म समभाव पर कहा था कि "सहनशीलता और समझदारी की हमारी प्राचीन परम्परा को ध्यान में रखते हुए हमारे विविधा युक्त समाज में सर्वधर्म समभाव के सच्चे मूल्यों का भारत के एकत्व को पूरी तरह समझना जरूरी है, जो इसकी सारी विभिन्नताओं को एक कर देता है।"

राष्ट्रवाद के प्रस्तोता डॉ. उपाध्याय राष्ट्रधर्म को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करते हैं, क्योंकि उनका राष्ट्रवाद राष्ट्र के समग्र विकास में तन, मन एवं धन से नागरिकों के समर्पण का आकांक्षी है। राष्ट्रवाद के अन्तर्गत राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रहित एवं राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरूकता ही हमें राष्ट्रवादी चिन्तक बनाती है। राष्ट्रवाद की भावना ही राष्ट्र के नागरिकों को राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के प्रति संवेदनशील बनाती है। राष्ट्र के प्रति निष्ठावान होना ही सच्चे अर्थो में राष्ट्रवादी होना है। राष्ट्रवाद की विराटता अक्षुण्ण रखना, अखण्ड रखना एवं राष्ट्रीय अस्तित्व को बनाए रखने हेतु प्रत्येक नागरिक को अपने स्तर से समर्पित होकर राष्ट्रहित में योगदान करना चाहिए। हमें यह भी सोचना चाहिए कि आज राष्ट्र है तो हम हैं, राष्ट्र नहीं है तो हम नहीं हैं। भारत वैश्विक स्तर पर अपनी संस्कृति, नैतिकता एवं अपनी सहिष्णुता के कारण अलग पहचान बनाने में सफल है। कहा गया है कि समाज धर्म और राष्ट्र धर्म निर्वहन के लिए व्यक्तिमान प्रत्येक नागरिक को सामाजिक होने की आवश्यकता है। नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों, सामाजिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था और विश्वास ही समाज धर्म और राष्ट्रधर्म के सोपान सिद्ध होंगे। डॉ. उपाध्याय राष्ट्र प्रस्तोता के रूप में भारतीय समाज को एक आदर्श समाज के रूप में स्थापित करना चाहते हैं, उनके राष्ट्रवाद में मानव जीवन के उत्कृष्ट तत्त्वों एवं मूल्यों को राष्ट्रहित में समर्पित करना है। उनका मत है कि भारत की सनातनी संस्कृति ही मानवीय एकता की अद्भुत मिसाल है।

राष्ट्रवाद के अन्तर्गत परम्परागत वैदिक मूल्यों, सामाजिक मूल्यों, आध्यात्मिक मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों को भारतीयों ने अपने जीवन में अपना कर एकात्म भाव उत्पन्न किया है। यह भाव ही राष्ट्रवाद का पर्याय बन गया है। सामाजिक का वास्तविक धर्म सहिष्णुता एवं न्यायप्रियता आदि है, जो राष्ट्रवादी भावना को नई ऊर्जा प्रदान करता है। भारतीय प्राचीन संस्कृति और सभ्यता ने इस राष्ट्रवाद को ठोस धरातल प्रदान किया है। उपाध्याय जी के धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय ने राष्ट्रवादी विचारधारा को उनकी कृतियों में गतिमान किया है। विश्व में भारत ही एक ऐसा धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है, जिसने हिन्दू संस्कृति के माध्यम से सभी धर्मो, सम्प्रदायों एवं पन्थों को राष्ट्रवाद के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कराया है। विश्व के अनेक धर्मी समाज को राष्ट्रवाद ने सर्वधर्म समभाव का संदेश दिया है। सभी वर्गो के साथ तथा सभी धर्मावलम्बियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने वाला भारतीय राष्ट्रवाद सह अस्तित्व में विश्वास रखता है।

वस्तुतः राष्ट्रवाद से ही भारतीय जीवन का अभ्युदय एवं आविर्भाव संभव हुआ है। यह भारत का राष्ट्रवाद है कि आज भारत विश्व की पाँचवीं अर्थव्यवस्था का राष्ट्र बन जाएगा। भारतीय तत्त्व चिन्तकों ने राष्ट्रवाद को नानाविध, मजबूती प्रदान की है। वास्तव में जो तत्त्व देश के, समाज के जीवन को धारण करता है, तथा समपोषक बनता है, वही राष्ट्रवादी कहलाने का अधिकारी है। भगवान बुद्ध ने कहा था कि ऐसे लोकधर्म का उपदेश करो, जिसमें कल्याण ही कल्याण हो। यह लोकहित की भावना एवं कल्याणकारी कामना ही राष्ट्रवाद को प्रतिष्ठित करती है। डॉ. उपाध्याय इसी सामंजस्यमयी भावना को भारतीय राष्ट्रवाद के लिए संजीवनी समझते हैं। 'आचारः परमोधरमाः' की उक्ति हमें सद्आचरण को प्रेरित और प्रोत्साहित करती है, जिसका सीधा सम्बन्ध राष्ट्रवाद से है। डॉ. उपाध्याय इसी राष्ट्रवाद की भावना को राष्ट्र का सर्वतोमुखी विकास मानते हैं।

वास्तव में राष्ट्रवाद जनमानस के मन मस्तिष्क को राष्ट्र के प्रति समर्पित करने को प्रेरित करता है। वह आभ्यन्तरिक रूप से विवेक द्वारा जन. जन के आचरण को मर्यादित बनाता और राष्ट्र सेवा के लिए प्रोत्साहित करता है। यह राष्ट्रवाद राष्ट्रीय जीवन के सशक्त दर्शन की अटल नींव पर अधिष्ठित है। भारतीय जीवन का प्रत्येक कर्म, चाहे वो व्यक्तिगत हो या राजनीतिक हो, सभी राष्ट्रीय भावना से ओत.प्रोत होते हैं। प्रत्येक नागरिक को अपने जीवन में इस राष्ट्रवाद को अंगीकार करना चाहिए तथा समर्पित भाव से राष्ट्र सेवा एवं राष्ट्रभक्ति में लग जाना चाहिए। डॉ. उपाध्याय का राष्ट्रवादी प्रस्तोता इसी भावना को अपनी कृतियों में व्यक्त करता है। उनके राष्ट्रवाद का उद्देश्य भारतीय जीवन में सुख, सौहार्द एवं शुचिता की सुव्यवस्था सुनिश्चित करता है ताकि समरस राष्ट्र की स्थापना हो सके। यह राष्ट्रवाद नैतिक व्यवस्था में आस्था, श्र)ा एवं विश्वास रखता है ताकि सही मायने में भारत अपना राष्ट्रीय धर्म निर्वहन कर सके। वास्तव में व्यक्ति, समाज, राज्य एवं राष्ट्र का आधार ही राष्ट्रवाद है।

डॉ. उपाध्याय का प्रस्तोता राष्ट्रवाद को किसी धर्म या सम्प्रदाय से नहीं जोड़ता बल्कि उसका अनिवार्य संबंध राष्ट्रीय अस्मिता से है। संगठनात्मक भाव वस्तुतः राष्ट्रीयता का ही एक रूप है तथा सुयश और शक्ति. सत्ता प्राप्ति का यह एक साधन स्वरूप भाव भी है। राष्ट्रवादविहीन भाव मानवजाति को वर्गवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद आदि वर्गो में विभाजित करता है, जबकि राष्ट्रवाद विभिन्न नामों एवं बैनर तले लोगों को एकत्रित करता है, एक.दूसरे से जुड़ता है और जोड़ता है। राष्ट्रवाद के आधार पर खड़ी राष्ट्रीयता धर्म या उपासना विधि से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में निर्णय लेती है और राष्ट्र को ही सर्वोच्च सत्ता समझती है। उपाध्याय जी का राष्ट्रवादी प्रस्तोता इसी सत्ता का समर्थन करता है। उनका राष्ट्रवाद इसी परिवेश की निर्मिति करता है। नागरिकों के मनोभावों, आदर्शो, आचार.विचारों एवं राष्ट्र के प्रति रागात्मक भाव ही उपाध्याय जी की दृष्टि में सच्चा राष्ट्रवाद है। यह भारतीयों का एक अविभाज्य जीवन.दर्शन बन गया है। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, पारसी आदि सभी भारतीयों का देश प्रेम और राष्ट्रसेवा इसी राष्ट्रवाद से जोड़ता है।

भारतीय राष्ट्रवाद धर्ममूलक राष्ट्रवाद है। इसमें चिरन्तन सत्ता की खोज का भाव निहित है। उसी को अभिव्यक्त करने का भारतीयों ने प्रयास किया है। भारतीय राष्ट्रवाद में धर्म और दर्शन का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। भारत का राष्ट्रवाद विश्वबन्धुत्व की भावना पर विश्वबन्धुत्व की भावना पर प्रतिष्ठित है, जिसमें मानवमूल्यों के प्रति आग्रह का भाव देखा गया है। नानात्व में एकत्व का भाव भारतीय राष्ट्रवाद का मूल सि)ान्त है। यह हमारी सांस्- तिक

एवं भौगोलिक एकता का परिणाम है। सरहरबर्ट रिजंली ने लिखा है कि "भारत में दर्शकों को भौतिक क्षेत्र में और सामाजिक रूप में भाषा, आचार भारत में और धर्म में जो विविधता दिखाई देती है, उसकी तह में, हिमालय से कन्याकुमारी तक एक आन्तरिक एकता है। यह एकता सांस्कृतिक एकता से उद्भुत हुई है। वेद, पुराण, गीता, उपनिषद्, रामायण, महाभारत सबके हैं।" भारतीय तत्त्वज्ञान का प्रभाव इस राष्ट्रवाद में देखा गया है। पूर्व में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति भारतीय जनमानस को आकृष्ट कर रही थी। सम्प्रति भारत अपने पुरातन संस्कृति के महत्व को धीरे.धीरे पुनः समझ रहा है, जिसकी परिणति राष्ट्रवाद में देखी जा सकती है। भारतीय जनमानस में अब राष्ट्रवाद की भावना जागृत हुई है, जिसको उपाध्याय जी के साहित्य सर्जक ने अपनी कृतियों में रेखांकित किया है।

राष्ट्रवादी चिंतक डॉ. उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति के परिपार्श्व में राष्ट्रवाद का भी समावेश किया है, जिसके कारण उनका सम्पूर्ण साहित्य लोक कल्याणी और लोकमंगल का विधायक सिद्ध हुआ है। राष्ट्रवाद के क्षेत्र में इच्छा, ज्ञान एवं कर्तव्य कर्म का समन्वय करते हुए समरसता की ओर उपाध्याय जी की दृष्टि बराबर बनी रहती है। इस समरसतावाद के साथ ही उनका राष्ट्रवाद साहित्यिक यात्रा करता है, जिसका चरम और परम उद्देश्य आनन्दवाद है, आनन्दानुभूति है। विश्व का भौतिक स्तर सम्प्रति जिस प्रकार परिवर्तित हुआ है, उसने भारतीयों के मानसिक स्तर एवं सोच में भी परिवर्तन ला दिया है। भारतीयों को अब अपनी शक्ति और सामर्थ्य तथा मेधा पर विश्वास बढ़ा है। आधुनिक भारत का चन्द्रयान तीन विषयक वैज्ञानिक अनुसंधान.परीक्षण वैज्ञानिक सफल प्रयत्न का साक्ष्य है। उपाध्याय जी का राष्ट्रवाद परम्परागत विश्वास, निष्ठा एवं उनकी आस्था से जुड़ा हुआ है। भारत की योजना गगनयान 4 का सफल परीक्षण 2025 में एक नया अध्याय जोड़ने वाला होगा, जिसके लिए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने चारों वैज्ञानिकों को बधाई दी है।

वर्तमान युग की वैज्ञानिक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में परम्परागत आस्तिक विश्वास के साथ सामंजस्य बिठाने के लिए राष्ट्रवाद के प्रस्तोता डॉ. उपाध्याय ने धर्म, दर्शन, राष्ट्र सेवा एवं विज्ञान को समन्वित रूप से निरखने. परखने पर बल दिया है। कारण है कि उपध्याय जी के अनुसार धर्म परम्परागत विश्वास, निष्ठा एवं भारतवासियों की आस्था पर निर्भर है। दर्शन बौद्धिकता और तार्किकता पर आधारित और संचालित होता है, जबकि राष्ट्र सेवा का आधार राष्ट्र के प्रति समर्पण, श्रद्धा एवं बुद्धिबल है। विज्ञान भौतिक उपकरणों के माध्यम से प्रकृति और जीवन का रहस्योद्घाटन करता है। सम्प्रति उपाध्याय जी के राष्ट्रवाद का चैतन्य इन चारों दृष्टिकोणों से समन्वित है, बंधा हुआ है। हमें स्मरण रखना होगा कि जो तथ्य बुद्धि और तर्क की पकड़ में नहीं आते, उसे इक्कीसवीं सदी का बुद्धिवादी विचारक एवं चिंतक स्वीकार करने को आज तैयार नहीं है। यह बुद्धि ही आधुनिक चिंतन का आधार है। बुद्धि को चिंतन.मनन का आधार बनाने से भारत का विश्वास प्रगाढ़ हुआ है और राष्ट्र के प्रति एक सकारात्मक श्रद्धा का अभ्युदय हुआ है। बुद्धि के आगे मनोजगत में भी हमें राष्ट्रवादी श्रद्धा जागृत करने की महती आवश्यकता है।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में भौतिक सुखों की प्राप्ति पर विशेष बल उपाध्याय जी ने दिया है, किन्तु ये भौतिक सुख.साधन मानव को सुख.शांति नहीं दे सकते। पाश्चात्य देशों में मशीनी सभ्यता से वहाँ का जनमानस ऊब चुका है। विस्तारवादी नीति ने विश्व को युद्ध के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। यह वैश्विक संकट किसी भी राष्ट्र के लिए शुभ नहीं है। भारत ने अपनी सुख.शांति के लिए आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का रास्ता अपनाया है, राष्ट्रोन्नति हेतु राष्ट्र के प्रति सहज रागात्मक संबंधों की स्थापना की है। भारत का राष्ट्रवाद आज विश्व को भी आकर्षित कर रहा है, जिसका साक्ष्य जी.20 का भव्य आयोजन रहा है। भारतीय का भारतीय पर विश्वास और पाश्चात्य का भी भारतीयों पर रागात्मक अनुराग देखकर यह सहज ही कहा जा सकता है कि न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

राष्ट्रवाद के प्रस्तोता डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय ने 'शिक्षा और संस्कृति', 'साहित्य और संस्कृति', 'सार्वभौम साहित्यशास्त्र', 'विश्व साहित्यशास्त्र की अवधारणा', 'विश्व के प्रमुख साहित्य.चिंतक' आदि कृतियों में आधुनिकता से परम्परा को जोड़कर देखा है, उसमें सामंजस्य स्थापना का प्रयास किया है। उपाध्याय जी के साहित्य में राष्ट्रीय अस्मिता को जीवंत बनाने का जो प्रयास है, वह परम्परानुमोदन नहीं है बल्कि स्वस्थ आधुनिक चिंतन का सकारात्मक परिणाम है। यही भारतीय राष्ट्रवाद को जीवंतता प्रदान करता है। उपाध्याय जी के प्रस्तोता लेखक ने अपनी कृतियों में आधुनिक विकासशील भारत को दृष्टिगत करते हुए नवनिर्माण के नये भारत का, विकसित होते हुए भारत का संदेश दिया है। यह हम सबको गौरवान्वित करता है। उपाध्याय जी ने स्वर्णिम अतीत के भारत को आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षण से समन्वित कर जोड़कर देखा है। उपाध्याय जी के राष्ट्रवादी प्रस्तोता को साहित्यिक यात्रा में विकासशील भारत की तस्वीर खींचने में अद्भुत सफलता मिली है। उन्होंने वैज्ञानिक परीक्षण के साथ.साथ धार्मिक और आध्यात्मिक सामरस्य की स्थापना करने का भी प्रयास किया है, जो उनको अपनी आन्तरिक चिन्तनवृत्ति को प्रकट करता है। उनका यह राष्ट्रवाद विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत.प्रोत है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने मिशन गगनयान 4 के अंतरिक्ष में जाने वाले चार वैज्ञानिकों – कैप्टन प्रशान्त बाल कृष्णन नायर, अंगद प्रताप, अजीत कृष्णन एवं विंग कमांडर शुभांश शुक्ला के नामों की घोषणा की। उन्होंने सभी को 27 फरवरी 2024 को 'एस्ट्रोनॉट विंग्स' प्रदान किए। भारत इस प्रकार अमेरिका, रूस और चीन के बाद अंतरिक्ष में मानव को भेजने वाला चौथा देश बन जाएगा, यह भारतीय राष्ट्रवाद की अभिनव उपलब्धि है। ये चार व्यक्ति नहीं बल्कि 140 करोड़ भारतीयों की आकांक्षाओं, अभिलाषाओं एवं स्वप्नों को अंतरिक्ष में ले जाने वाली चार शक्तियाँ हैं, जिनमें राष्ट्रवादी ऊर्जा कूट.कूट कर भरी हुई है। आज शिवशक्ति प्वाइंट विश्व को भारतीय सामर्थ्य से परिचित करा रहा है। 2035 तक आशा है भारत का अंतरिक्ष में अपना स्टेशन होगा।

डॉ. उपाध्याय का राष्ट्रवाद समाजोत्थान एवं राष्ट्रोत्थान से समन्वित है। जैसे धर्म के माध्यम से समाज में ऐक्य स्थापित किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार उपाध्याय जी के अनुसार राष्ट्रवाद के माध्यम से विश्व कल्याण की कामना की जा सकती है। यह राष्ट्रवाद न केवल वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को प्रोत्साहित करता है, बल्कि राम राज्य के आदर्श शासन को भी स्थापित करने में सक्षम है। राम राज्य में धर्म नियंत्रित प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था थी। भारत में सदैव से राजतंत्र का स्वरूप प्रजातांत्रिक रहा है, जिसके कारण सनातन धर्मी सदैव विश्व कल्याण की भावना से ओत.प्रोत दिखायी देते हैं। उपाध्याय जी के अनुसार भारत की समग्रता राष्ट्र सापेक्षता में निहित है। सनातन धर्म के पावन ग्रन्थ वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ एवं शास्त्र राष्ट्रवाद के कारण ही मानवीय मूल्यों और जीवनादर्शों की स्थापना जन मानस को जागृत करते हुए किए हैं। सम्प्रति राष्ट्रवादी भावना के कारण सर्वधर्म समभाव के भारतीय चिन्तन में बदलाव

देखने को मिला है। राष्ट्रवादी प्रस्तोता राष्ट्रधर्म को सर्वोच्च और सर्वोपरि मानते हैं। भारत विश्व का गुरु रहा है और आज भी उसी भूमिका में है, जिसके मूल में राष्ट्रवाद की भावना निहित है। आज राष्ट्र को राष्ट्रवादी राजनेता, वैज्ञानिक, लेखक एवं अन्य कर्मियों की आवश्यकता है। भारतीय संविधान राष्ट्रवादी विचारधारा का पोषक एवं समर्थक है। धर्मनिरपेक्ष भारत का अभिप्राय ऐसे राष्ट्र से है, जो सभी सम्प्रदायों और सभी धर्मावलम्बियों के हितों का ध्यान रखता है। उपाध्याय जी का सर्जक साहित्यकार इसी राष्ट्रवाद का समर्थक है, जिसमें वर्गहीन, सम्प्रदायहीन एवं जातिहीन सभी लोगों को समान अधिकार प्राप्त है। विश्व में भारत ही एक ऐसा धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है, जिसने सनातन संस्कृतियों के माध्यम से सभी धर्मो एवं सम्प्रदायों के कल्याण की कामना करता है। भारत की सनातनी संस्कृति ही वास्तव में इस राष्ट्रवाद का परिचायक है। डॉ. उपाध्याय की साहित्यिक और शिक्षा विषयक कृतियाँ इस राष्ट्रवाद को पुष्ट करती हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय चिन्तक एवं प्रस्तोता का कथन विशेष महत्वपूर्ण है। उन्हीं के शब्दों में "आज आवश्यकता इस बात की है कि छात्रों की अभिरूचियों, रूझानों एवं भावों का विकास विद्यालय स्तर पर इस रूप में किया जाए कि वे भारतीय संस्कृति की महत्ता को अच्छी तरह से समझ सकें। छात्रों को राष्ट्र के भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तत्वों से अवगत कराना परमावश्यक है ताकि राष्ट्रीय चेतना जागृत हो सके। योग्यता के आधार पर शिक्षकों का चयन किया जाय तथा पाठ्यक्रम को सरस, रुचिकर एवं व्यावहारिक बनाया जाय ताकि जीविकोपार्जन का उद्देश्य भी प्राप्त हो सके।"

डॉ. उपाध्याय का राष्ट्रवाद वास्तव में सत्य का रहस्योद्घाटन है। उनके साहित्य में सत्य सदैव शिव बनकर उपस्थित हुआ है। राष्ट्रवादी प्रस्तोता का नाम पशुपतिनाथ स्वयं शिव का पर्याय है तथा कल्याणकारी है। प्रकारान्तर से उन्होंने राष्ट्रवाद को सत्यम् शिवम् के रूप में विश्लेषित करने का प्रयास किया है। सत्य का उद्देश्य ही शिवमय हो जाना है, शिव की सत्ता में समर्पित हो जाना है। वास्तव में यही सत्य का नैसर्गिक स्वभाव भी है, प्रकृति और, प्रवृत्ति भी। सत्य का भान हमें तभी होता है जब हम सत्य की शिव रूप में अनुभूति करते हैं। यही कारण है कि सत्य का शिव रूप अभिन्न है, शाश्वत है, विच्छिन्न है और समग्र भी। अतएव जो सत्य है वही शिव है और जो शिव है वही सत्य है। सत्य सदैव शिवम् रूप में ही विद्यमान होता है जो मंगलकारी, कल्याणकारी सिद्ध होता है। राष्ट्रवादी प्रस्तोता का स्पष्ट मत है कि बहुविषयक शिक्षा समग्र राष्ट्र के विकास में उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध हो सकती है। उपाध्याय जी का शिक्षाविद् राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का पुरजोर समर्थन करता है तथा शिक्षा का उद्देश्य समाज कल्याण और राष्ट्र कल्याण भी मानता है। इस अवधारणा की पुष्टि राष्ट्रीय शिक्षा नीति के द्वारा भी परोक्ष रूप से हो जाती है। कहा गया है कि एक समग्र और बहुविषयक शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की सभी क्षमताओं – बौद्धिक.सौन्दर्यात्मक, सामाजिक, शारीरिक, भावात्मक तथा नैतिक को एकीकृत तरीके से विकसित करना होगा। ऐसी शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, कला मानविकी, भाषा, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, और व्यावसायिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण 21वीं सदी की क्षमता, सामाजिक जुड़ाव की नैतिकता, व्यवहारिक कौशल (साफ्ट स्किल्स), जैसे सम्प्रेषण, चर्चा, वाद.विवाद, और एक चुने हुए क्षेत्र या क्षेत्रों में अच्छी विशेषज्ञता में मदद करेगी। इस तरह की एक समग्र शिक्षा, लम्बे समय तक व्यावसायिक, तकनीकी और पेशेवर विषयों सहित सभी स्नातक कार्यक्रमों का दृष्टिकोण होगा। वास्तव में आज के स्कूलों की जरूरत है, ताकि हम 21वीं शताब्दी और चौथी औद्योगिक क्रान्ति का नेतृत्व कर सकें।"

अतः शिक्षाविद् का राष्ट्रवाद उस नवीन भारतीय राष्ट्रवाद का घोर समर्थक है, जो भारतीय दृष्टिकोण को और वैदिक परम्परागत सिद्धान्त को अंगीकार किए हुए है। प्रस्तोता का समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपने आप में बहुमूल्य है तथा उन्होंने नवीन प्रौढ़ चिन्तन से सारगर्भित सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना की है, जिसकी परिणति भारतीय राष्ट्रवाद में देखने को मिली है। उनकी विधेयात्मक दृष्टि से प्राचीन और समसामयिक साहित्य के आधार पर राष्ट्रवादी मान्यताओं को सप्रमाण प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

वस्तुतः ग्राम स्वराज को ही उपाध्याय जी वास्तविक स्वराज मानते हैं, क्योंकि भारतवर्ष की अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है। प्रत्येक भारतीय का यह दायित्व है कि वह भारतीय संस्  ति के मूलभूत तत्त्वों को अपने आचरण में लावें तथा समाजहित और राष्ट्रहित में व्यावहारिक फलक प्रदान करें। लोकतांत्रिक मूल्यों के रक्षार्थ ग्राम्य संस्कृति का प्रचार.प्रसार परमावश्यक है ताकि ग्राम्य स्वराज की भावना को जन.जन तक पहुँचाया जा सके। डॉ. उपाध्याय गाँवों का विकास ही वास्तविक विकास मानते हैं। राष्ट्रीय प्रस्तोता डॉ. उपाध्याय का स्पष्ट मत है कि "केन्द्रीय सरकार शाश्वत मानवीय मूल्यों में धर्म, अहिंसा, सत्य, शांति एवं प्रेम को दृष्टिगत करते हुए ग्राम्यस्वराज हेतु सतत प्रयत्नशील है। साथ ही स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, जनतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति सम्मान, सामाजिक विभेद की विरासत समाप्ति, पर्यावरण संरक्षण चेतना, दलित पिछड़े वर्ग के प्रति सहानुभूति आदि मूल्यों को पुनः अधिष्ठित और प्रतिष्ठित करने हेतु ग्राम्यांचल तक पहुँचने की कोशिश कर रही है।"

राष्ट्रवादी प्रस्तोता डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय के साहित्य में उनके संतुलित जीवन.दर्शन का मंगल विधान निहित है तथा मंगल विधायक रूप निहित है। उनकी प्रत्येक कृति में समरसता का वह कल्याण पक्ष मुखरित हुआ है, जो भेद.बुद्धि के परिहार द्वन्द्वात्मकता की अनवरत साधना का गुणनफल सिद्ध हुआ है। वास्तव में उनका साहित्यिक व्यक्तित्व मनोवृत्तियों के परिष्कार, समत्व प्राप्ति की उर्ध्वमुखी साधना है। राष्ट्रीयता से प्रेरित और प्रोत्साहित होकर उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है।

एक जागरूक साहित्यकार की तरह उपाध्याय जी ने अपने साहित्यिक परिवेश में परम्परागत स्वस्थ जीवन मूल्यों को बराबर विवेचन के केन्द्र में रखा है। उन्हें जीवंतता प्रदान करने का यह सरल उपाय है। उन मूल्यों और जीवनादर्शो को जीवित रखना भारत की सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखना है। समकालीनता का आग्रह उपाध्याय जी के साहित्यकार के लिए अधिक महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि अन्ततः साहित्यिक विरासत का मूल्यांकन वे इसी कसौटी पर कसने के लिए बाध्य हैं, यह उनकी बाध्यता भी है। आधुनिकता और समकालीनता की धारणाओं के पीछे अनेक पाश्चात्य अवधारणाओं का उनका अध्ययन भी है। इसी प्रकार परम्परा, साहित्यशास्त्र, योग साधना, यात्रा वृत्तांत आदि के बारे में भी उनका चिन्तन पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित है। उपाध्याय साहित्य की जड़ें भारतीय संस्कृति, द्वैतदर्शन एवं समन्वयात्मक संस्कृति में गड़ी हैं। वे भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के साहित्य के बीच सामंजस्य खोजने की कोशिश करते रहते हैं।

समकालीनता के प्रति उनका इतना अधिक आग्रह है कि उन्होंने समकालीन हिन्दी कविताः दशा और दिशा, समकालीन हिन्दी आलोचनाः दशा और दिशा, समकालीन हिन्दी नाटकः दशा और दिशा, यात्रावृत्तांतः सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य एवं ब्रिटेन प्रवास के नब्बे दिन आदि कृतियों का प्रणयन समकालीन परिवेश को दृष्टिगत रखते हुए किया है। मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उपाध्याय जी ने प्रेम और श्रेय में सामंजस्य स्थापित करना चाहा

है। उनका साहित्यकार बीको, हर्डर, हीरोज, कोचे आदि पाश्चात्य चिंतकों के सिद्धान्तों से प्रभावित है। मानव की कलात्मक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावबोध की आधार चेतना को उपाध्याय जी ने एक ही माना है। उनकी समकालीन दृष्टि मूलतः वैज्ञानिक और यथार्थवादी है। उपाध्याय जी की रचनाशीलता का अपना आत्मविश्वास है, जिसके बल पर वे आज भी सक्रिय होकर लेखन से जुड़े हुए हैं। उनकी 2024 में प्रकाशित 37वीं कृति है 'भारतीय शिक्षा.दर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति।' उनका आस्तिक और सात्विक मानस धार्मिक और दार्शनिक कृति से समन्वित है, मंडित है।

राष्ट्रीय भावना में सृजन, प्रदर्शन एवं अनुभावन की प्रवृत्तियां प्रायः समन्वित रहती हैं, जिसमें पाठक अपने सामान्य जीवन और व्यवहार की तुलना में कुछ वैशिष्ट एवं नव्यता का अनुभव करता है। वैशिष्ट्य इसके अतिरिक्त राष्ट्रवाद का एक अलग रूप भी देखने को मिलता है, जिसको उपाध्यायजी के राष्ट्रवादी प्रस्तोता ने अनुभव किया है। उसमें दर्शन, सृजन एवं प्रदर्शन तीनों का समाहार एवं समन्वय देखा जा सकता है। डॉ. उपाध्याय का राष्ट्रवादी प्रस्तोता बना हुआ है। साक्ष्य है यह कथन, वैश्विक स्तर पर विश्व के समस्त देश विभिन्न भाषाओं, धर्मो, सम्प्रदायों, जातियों, वर्गो, आस्थाओं, विश्वास, मान्यताओं की विविधता से जुड़े हुए हैं। वास्तव में विश्व भावना के स्तर पर, विचार और आदर्श के स्तर पर, मानसिक विकास के स्तर पर, पारस्परिक सौहार्द के स्तर पर तथा वैज्ञानिक सोच के स्तर पर किसी न किसी रूप में सभी देशों से जुड़ा हुआ है। मानव संवेदनात्मक प्राणी है, जिसमें कल्याण, परोपकार, अहिंसा, दया, करुणा, सहानुभूति, विनम्रता, क्षमा, स्नेह आदि की जो भावना निहित है, उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम अपने.अपने देश की सभी की अलग.अलग भले ही भाषाएँ हैं, लेकिन विचार के स्तर पर, मानव कल्याण के स्तर पर, विश्वशांति के स्तर पर सभी में करीब.करीब समान प्रवृत्ति देखी जा सकती है। भारतीय वेद, उपनिषद्, गीता, गुरुग्रंथ साहिब, बाइबिल आदि सभी में उच्च मानवीय मूल्यों, आदर्शो एवं मानवीय संवेदनाओं के तत्त्व विद्यमान हैं। गुरुओं की वाणी हो या बाइबिल का संदेश या गीता का उपदेश या कुरान शरीफ का पैगाम, समाज.सुधारकों का सद् सुझाव हो या साहित्यकारों की सद्शिक्षा सभी मानव को भावात्मक स्तर पर एकसूत्र में जोड़ते हैं, समन्वित करते हैं।

कविता
अवन्तिका तूनवाल 'अवनि'
व्याख्याता (संस्कृत), शहीद परवेज काठात रा.उ.मा.वि.
शेखावास, ब्यावर,
मोबाइल–9001368022

जीवनरक्षक

वाह रे लेखनी! तुझे मेरा
कोटि.कोटि प्रणाम
क्योंकि आज बन गई है
तू सबकी गुलाम
निर्भया हत्यारों को फाँसी दे
मत इतरा जयगान पर
अभी शेष है विजय तुम्हारी
अन्यायों के अवसान पर
जज के हाथों में चढ़कर
मत बढ़ा अपना अभिमान
प्रत्यक्ष के अभाव में
ना रह सत्य से अनजान
हाथ चढ़ मुनीम के जब
;ण बढ़ाया निर्धन का
रक्त ना बढ़ा सकी तो
क्यों रुदन बढ़ाया जन का
विराज कर डॉक्टर के हाथ
लिखते रहना जीवनदान
रिश्वत पर रुक जाना बस
नष्ट करके अपने प्राण
जब लगी कवि के हाथ
चली ठण्डी और गरम
कठिन भी बन गया सरल
जब चली तीखी नरम
लिखा है आज तक तूने
इतिहास हर इंसान का
साथ ना देना बस
असत् व झूठी म्यान का
मिले जब जब तुझे
शिक्षा समर्पित हाथ
उसी के हाथों से चलेंगे
और हजारों हाथ
तू होगी उन हाथों में
या तेरी बहनें साथ
उसकी ज्योति से मिटेगी
हर अज्ञानी रात
तुझसे ही जिसने बनाये
जज, मुनीम व चिकित्सक
तू ही बता 'अवनि' को
कौन है वो जीवनरक्षक?
मेरा तो अस्तित्व शिक्षक
है मेरा सर्वस्व शिक्षक
जिसने मुझे प्राण डाले
वही मेरा जीवनरक्षक

कविता
अशोक गुजराती
निहारिका ऐब्सोल्यूट, सेक्टर – 39.ए,
खारघर, नवी मुंबई
मोबाइल–9971744164

ग्रास रूट

पानी के बन्द पाउच में
अन्दर अटका एक बुलबुला
आजादी चाहता तो है
जब तक नहीं आता ऊर्ध्व दबाव
पाता खुला वितान
वह अभिशप्त है
कइयों ने की कोशिश
लेकिन दबाते रहे वे ऊपर से
बुलबुला और.और नीचे
खिसकता रहा
निचली सतह से
शीर्ष पर लाने का
करते हैं दावा बहुत
ला नहीं पाते समकक्ष भी
जिन्दगी की ऊंचाइयों से
लाभान्वित वे
नहीं कर पाते जतन
गहराई में उतरने का।

राहत

हो बेतहाशा तनाव
दु:ख की बदली से घिरा हो मन
अवसन्न.सा
छायी हो विकलता पोर.पोर में
आ जाये फोन
अपने प्रिय का
बातें हों प्रेम.भरी
धुल जाता है सारा क्लेश
पहली बारिश की तरह
सुख की तरंगें
तृप्ति की लहरें
लगती हैं उछलने
खुशबू मिट्टी की आने लगती है
हृदय की संतप्त भूमि से...

कहानी

# अस्मि

डॉ. मलिक राजकुमार
मियांवाली नगर, दिल्ली
मोबाइल – 9810116001

अस्मि जब पैदा हुई तो हमारे घर भर में खुशियों की बहार दस्तक देने लगी। दरअसल अस्मि का जन्म हमारे लिए एक शिशु की टटकी अदाओं और किलकारी का माध्यम भर नहीं था, बल्कि इससे भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण था।

हम पाँच भाई–बहिनों में और हमारी ससुराल पक्ष के भाई–बहिनों के बीस.पच्चीस परिवारों में एक लंबे अंतराल के बाद शिशु का जन्म हुआ था। हुआ कुछ ऐसा कि हमारे विवाह होते गए, घर में संतानों ने हाजिरी दर्ज कराना शुरु कर दिया। हमारे परिवार रोजी.रोटी के जुगाड़ की व्यस्तताओं में उलझे हुए थे।

दिन.रात कमाने की चिंता, स्वयं को स्थापित कर पाने की जद्दोजहद। मकान बनाने का सर दर्द, बच्चों को पढ़ाने का, फिर उन्हें स्थापित करने का संघर्ष यानी एक लंबे सिलसिले से जूझने के चक्कर में बच्चों के बाल सुलभ प्यार.दुलार.जिदों इत्यादि में जीवन का रस तलाशने का हमारे पास न समय ही था न ही कोई कोशिश या प्रयास।

जब निमिषा की शादी हुई तो चारों ओर परिवार में खुशी और बधाईयाँ प्रतिदिन, प्रतिक्षण नृत्य करती प्रतीत होती थीं।

हमारा सारा परिवार पढ़ा.लिखा और उच्च नौकरियों पर आसीन है। लंबे अर्से के बाद आने वाली घर की खुशी ने तो माहौल को खुशगवार और आकर्षक बनाना ही था।

जब अस्मि के जन्म का समय आया तो हम पति.पत्नी भागे अस्पताल की ओर। आजकल तो नवीनतम तकनीक और सुविधाओं का ज़माना है। अत: मन में कहीं कोई चिंता नहीं थी बस अस्मि के आने की प्रतीक्षा की बेसब्री ही हमें बेचैन किए देती थी।

शाम सात बजे के आस.पास डॉक्टर ने सूचना दी कि बेटी ने जन्म लिया है। मेरी पत्नी ने तुरंत कहा कि अस्पताल के इस फ्लोर के सारे स्टाफ की गिनती कर लो और हलवाई को फोन करो अच्छी मिठाई के डिब्बे दे जाए।

मुझे लगा यह ज्यादा जल्दी नहीं है कि अभी सभी को सूचना देनी है... एक दिन तो प्रतीक्षा करनी ही चाहिए। पर पत्नी ने टोक दिया कि जो महत्व आज के समय का है वह कल क्यों कर होगा। आपने अच्छा किया कि मुझे याद दिला दिया कि सभी तो बधाई देने आएंगे ही। ऐसा करो सौ डिब्बे मिठाई का ऑर्डर कर दो, जो भी बधाई देने आएगा मैं नहीं चाहती कि उसे खाली हाथ भेजूं। और हाँ यह भी ध्यान रखिएगा कि नीचे की मंज़िल पर अस्पताल की कैन्टीन है वहाँ सभी का चाय.ठंडे से अवश्य स्वागत करते रहिएगा।

हलवाई सौ डिब्बे मिठाई रख गया तो बाहर प्रतीक्षा कक्ष में एक कोना पूरा घिर गया... जब अस्पताल स्टाफ को डिब्बे दिए तो हर एक ओर से एक ही बात सामने आ रही थी। बधाई... लगता है बहुत वर्षो के बाद आपके घर लड़का हुआ है।

हमें सफाई देनी पड़ती हाँ बहुत वर्षो के बाद हमारे ख़ानदान में किलकारी अवश्य गूंजी है जो हमारे लिए महत्वपूर्ण है पर लड़का नहीं लड़की जन्मी है। उधर से आश्चर्य व्यक्त किया जाता... लड़की के जन्म पर भी इतनी खुशी, भाई क्या बात है!

मैं उनको समझाता, भाई आप किसी पिछड़े जमाने में विचरण कर रहे हैं, आजकल लड़के.लड़की के अंतर को मानने का समय नहीं है। हमारे घर शिशु हुआ है लड़का या लड़की कुछ भी हो उससे क्या फर्क पड़ता है। जो भी है हमारा है... हम उसका अभिनन्दन करते हैं... स्वागत करते हैं। मिठाई बाँटना भी हमारी खुशी ज़ाहिर करने का एक तरीका है।

अस्पताल से छुट्टी हुई तो घर पहुँचे, सारे परिवार के सदस्यों ने अपनी.अपनी पसंद के नाम रखने शुरु कर दिये। अरे इसके लिए परी नाम अच्छा रहेगा... परी तो पुराना नाम हो गया... इसका नाम है चिड़िया... अरे चिड़िया भी कोई नाम होता है इसे हम गुड्डू कहेंगे... गुड्डू नहीं, चिंकी... नहीं सबा... नहीं सना... सबा और सना तो मुसलमानी नाम है।

अरे जाने दो नामों का भी कोई मजहब होता है क्या... वैसे भी हम लोग दिल और दिमाग की खिड़कियाँ–दरवाज़े खुले रखने वाले लोग हैं। ले दे कर नाम रखा गया संस्‍त पर आधारित नाम... अस्मि... जिसका अर्थ होता है 'होना'। जैसे अहं ब्रह्मा अस्मि... शाहीना भाभी ने बताया कि यह तो 'अरबी' शब्द है उस भाषा में भी इस शब्द का यही अर्थ होता है।

देखा न आपने, मैं कहता था कि नाम का न कोई मजहब होता है न देश, वह तो बस एक अर्थ व्यंजित करता है और महत्व उसी अर्थ का होता है।

बहरहाल हम इन सारे झमेलों से निकल आए और आख़िरकार दो नाम प्रचलित हुए एक अस्मि जो पक्का नाम होगा और दूसरा चिड़िया जिसे अपनी सुविधानुसार दुलारकर हमने चिया या चियू कर लिया था। हमारे सामने हर पल यही प्रश्न होता कि ये बड़ी कब होगी... कब ये बोलना सीखेगी और हमारी बातों को समझने लगेगी।

डेढ़ साल की होते.होते अस्मि ने बोलने का प्रयास शुरु कर दिया था। पर अभी सिर्फ एक शब्द बोलती थी। मौसा के लिए मो... मासी के लिए माँ, नानी के लिए न पर मुझे बड़े मजे से नाना कहती धीरे.धीरे नाना को उसने नानू कर दिया था। हम उसकी इन अदाओं पर कुर्बान जाते।

जब भी अस्मि को मुझ पर प्यार आता वह बड़े मजे से बोलती... चिया के नानू... मैं भी उसी के लहजे में उत्तर देता नानू की चिया... और उसकी किलकारी गूँज उठती जो अंदर तक आह्लाद से भिगो जाती।

धीरे–धीरे उसने हमारे घर को पहचानना शुरु कर दिया था। हमारे घर आते समय सड़क पर ज्योंही फ्लाईओवर नजर आता वह किलकारी मारने लगती नानी का घर... हवला–पूरी खानी है। नानी बड़े मनोयोग से हलवा–पूरी बनाती। कभी पत्नी कहती इसे जुराब पहना कर जूते पहना दो। मैं ऐसा ही करता साथ ही जिया कहती... नानू को तो सौक्स पहनाना भी आता है... नानू को तो शूज पहनाना भी आता है।

नानी उसे सुलाते समय कहानी सुनाती। एक बकरी थी... उसके तीन बच्चे थे ऐंगू मेंगू और टेंगू। जब बकरी घर से बाहर आयी तो उसने बच्चों

से कहा कि कोई आए तो दरवाज़ा नहीं खोलना। जब मैं आऊँगी तो कहूँगी ऐंगू दरवाज़ा खोल, मेंगू दरवाज़ा खोल... टेंगू दरवाज़ा खोल, मैं तुम्हारी माँ। एक टाइगर पीछे से छुप के सुन रहा था। जब बकरी चली गयी तो उसने दरवाज़े पर आकर कहा – "ऐंगू दरवाज़ा खोल, मेंगू दरवाज़ा खोल, टेंगू दरवाज़ा खोल, मैं तुम्हारी माँ।"

बच्चों ने समझा हमारी माँ आ गयी है उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया तो टाइगर ऐंगू, मेंगू, टेंगू को खा गया। जब बकरी वापस आयी तो घर में कोई नहीं था। बकरी को गुस्सा आ गया, उसने जाकर टाइगर के पेट में सींग मारकर उसके पेट में से अपने बच्चे निकाल लिए।

नानी अस्मि से पूछती... बकरी ने अपने बच्चों से क्या कहा था। चिया जबाव देती उसने कहा दरवाज़ा नहीं खोलना। हम सब आश्चर्य करते कि छोटी सी बच्ची बात को कितनी आसानी से समझ कर निर्णय निकाल लेती है। अस्मि अपनी गुड़िया को कहानी सुनाती – "एक टाइगर था... वो बकरी के बच्चे खा गया... बकरी ने सींग मारकर अपने बच्चे निकाल लिए।"

अब चिया ढाई साल की हो गयी है। पूरी बात भी समझ लेती है और स्वयं भी बात कर पाती है। मैंने सोचा इसे और भाषाओं का ज्ञान भी देना चाहिए।

मैंने कहा – "चिया नानू जी गुलपुट आहे।"

चिया ने फौरन पूछा – "नानू ये क्या है?"

"बेटा यह सिन्धी भाषा है... यह भाषा तो तुम्हारी मम्मी को भी नहीं आती... तुम सीखोगी...।"

"हा... हा... नानू, सिखाओ मैं जरूर सीखूंगी।"

"अच्छा तो बोलो, चिया नानू जी गुलपुट आहे", मैंने उत्साहित होकर कहा।

"चिया नानू जी गुलपुट आहे", चिया ने तुरंत उच्चारित किया। एक. दो बार कहने के बाद वह दौड़ती हुई निमिषा के पास गयी और बोली... "चिया नानू जी गुलपुट आहे।"

निमिषा ने पूछा... "ये क्या होता है?"

"ओ... हो... मम्मी को तो सिन्धी भी नहीं आती... चिया को तो सिन्धी भी आती है।"

"अच्छा... अच्छा आपको सब कुछ आता है... अब तो खुश... पर इसका मतलब क्या है यह तो बता दे।"

"नानू को पता है मतलब, नानू ने सिखाया... अभी पूछ कर आती हूँ।" और दौड़ती हुई मेरे पास आयी... "नानू इसका मतलब क्या है... मम्मी पूछ रही है।"

"चिया नानू जी गुलपुट आहे का मतलब है चिया नानू का फूल बेटा है।"

तभी उसके पीछे.पीछे निमिषा भी आ गयी। उसके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ साफ थीं।

"क्या हुआ निमिषा बेटा... कुछ परेशान लगती हो।"

"हाँ... पापा जी अस्मि को लेकर ही परेशान हूँ। पिछले कुछ दिनों से इसका व्यवहार बदला.बदला सा है। कई बार ऐसा लगता है जैसे सहम गयी हो। यह अचानक हँसते.खेलते चुप हो जाती है जैसे कुछ सोच.विचार कर रही हो और तब इससे कुछ पूछती हूँ तो बस इतना कहती है... आप मुझे कब वापस भेजोगे। कहाँ... क्यों... कितना भी पूछो कुछ नहीं बताती, बस चुपचाप मेरे मुँह की ओर ताकती रहती है। आपसे यह बहुत हिली हुई है, आपका कहना भी मानती है, आप ही इससे पूछ कर देखो... पर पापा जी कोई ख़ास बात ज़रूर है।"

निमिषा की बातें मुझे अंदर तक बेधने लगीं। निमिषा ठीक कहती है कुछ न कुछ गंभीर बात ज़रूर है। साधारण तौर पर अस्मि पूरा वाक्य बोलती है। टू द प्वांइट ही बात करती है। बिना मतलब की बात तो यह बिल्कुल भी नहीं करती।

"ठीक है, इसे दो दिन यहीं हमारे घर पर ही छोड़ दो, मैं कोशिश करता हूँ कि इससे सच निकलवा सकूँ", मैंने निमिषा से कहा।

इन दो दिनों में मैंने अस्मि को बहुत सारी कहानियाँ सुनाईं और प्रश्न पूछे। वह ध्यान से कहानी सुनती और हर प्रश्न का सही उत्तर देती। घूम. फिर कर मैंने एक कहानी के माध्यम से उसे कहानी सुनाने को कहा।

अब अस्मि ने कहानी सुनाई, "एक भगवान जी का घर है। उसमें टू रूम हैं, एक रूम में बॉयज हैं दूसरे रूम में गर्ल्स हैं। भगवान जी रोज़ एक बॉय और एक गर्ल को ज़मीन पर भेजते हैं। लड़के जाते हैं तो वापस नहीं आते, लड़की जाती है तो वापस आ जाती है। भगवान जी कहते हैं कि लोग लड़कियों को प्यार नहीं करते। नानू आप मुझे कब वापस भेजोगे?" वह उत्सुकता से मेरी ओर देखने लगी।

उसकी बातें सुनकर मेरा भेजा फ्राई हो गया। यह किस समाज में हम रह रहे हैं जहाँ कन्या भ्रूण हत्या इस हद तक बढ़ गई है कि ढाई साल की बच्ची को भी चिंता बन गयी है। पर मैं करूँ क्या, समाज को एकदम बदल पाना, उनकी मानसिकता को तोड़ पाना मुझ अकेले के बस की बात नहीं है।

मेरे दोस्तो मैं शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं चिया से बहुत प्यार करता हूँ, हमारे सभी रिश्तेदार भी उससे बहुत प्यार करते हैं। उसकी चिंता हमारे लिए दु:ख का कारण है। क्या आप भी मेरे साथ मिलकर संकल्प लेंगे कि हम प्रयास करें कि अब कोई बच्ची आए तो उसे वापस न भेजा जाए। भविष्य में कोई भी बच्ची अपने परिवार से इस तरह का प्रश्न न पूछ सके।

कहानी

# वरदान

शुभदा मिश्र
14, पटेलवार्ड, डोंगरगढ़
मोबाइल–8269594598

वह सन् दो हजार की एक सुबह थी। चार लड़कों को पढ़ा रही थी कि पड़ोसी युवक बब्बू ने आकर कहा... "याज्ञिक जी का फोन है।"

वे मेरे भारी कड़की के दिन। मोबाइल तो चलन में था नहीं। फोन भी नहीं था मेरे पास। पड़ोस का युवक बब्बू 'पी.सी.ओ.' चलाता था। हमारे जैसे लोग फोन का काम उसी के पी.सी.ओ. से चलाते थे। किसी का फोन आये तो बब्बू आकर बता जाता था।

मेरा दिल धड़का। पिछले दिनों याज्ञिकजी ने कहा था... तुम्हारा नाम 'साहित्यश्री पुरस्कार' के लिए अनुमोदित कर देता हूँ। कहीं ये तो बताने वाले नहीं कि तुम्हारे नाम की घोषणा हो गई है। धड़कते दिल से जाकर मैं बब्बू के पी.सी.ओ. में बैठ गई। जैसे ही घंटी बजी, मैंने फोन उठाया, "सर! प्रणाम।"

"खुश रहिए, आज का अखबार देखा।"

"क्या है सर"... मुझे लगा, जरूर पुरस्कार के लिए अखबार में मेरे नाम की घोषणा हो गई है।

"क्या देखती हो भई तुम... यहाँ दूर बैठे बैठे मैं तुम्हारे लिए चिंता करता रहता हूँ। तुम्हें परवाह ही नहीं। बेहद लापरवाह हो।"

"क्या हो गया सर"...

"तुम्हारे शहर के 'भल्ला स्कूल' का विज्ञापन निकला है। अब वे लोग अँग्रेजी माध्यम की भी शाखा खोलना चाहते हैं। प्राचार्य और शिक्षक दोनों की जरूरत है उन्हें। तुम तो दोनों के लिए आवेदन कर दो।"

सुनते ही मुझे झटका लगा... इस बुड्ढे को यही सब सूझता रहता है। बोली... "जी सर।"

"जी सर क्या, फौरन आवेदन करो। फिर देखते हैं, क्या हो सकता है।"

"जी अच्छा"...

"जी अच्छा क्या... यह मौका मत गंवाइये। आवेदन कीजिए दोनों के लिए और मुझे खबर कीजिये।"

मेरा मन इतना खराब हुआ कि जिसका कोई हिसाब नहीं। मेरे बुझे हुए जी सर, ने उन्हें और भड़का दिया... "इतना लापरवाह इंसान मैंने आज तक नहीं देखा। अपने ही भविष्य की चिंता नहीं।"

उनके भड़कने से मैंने उत्साह दिखाते हुए कहा... "मैं बस आज ही आवेदन कर रही हूँ सर"...

पी.सी.ओ. से लौटते हुए मैं सोच रही थी... आवेदन करेगा मेरा ठेंगा। अपने तो बुढ़ऊ नौकरी छोड़े बैठे हैं। मजे से लिख पढ़ रहे हैं। जब भी इनकी कोई रचना छपती है, फोन करते हैं... "अमुक पत्रिका में मेरी रचना छपी, देखी तुमने।" मेरी रचनाएँ छपती हैं तो तारीफ तो करते हैं मगर जरूर मन ही मन जलते हैं। चाहते होंगे कि मैं नौकरी में उलझ जाऊं और मेरी रचनात्मकता मर जाये। आधी जिंदगी घर परिवार के चक्रव्यूह में उलझते, पिसते, आखिरकार मैं किसी तरह निकल पाई उस गलाजत से। सांस ली मुक्ति की कि अकेले पेट का क्या है, दो. चार बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर गुजारा कर लूंगी और लगूंगी अपनी चिर अभीप्सित साहित्य साधना में। सो पढ़ाना शुरु कर दिया था और समय निकालकर कुछ कुछ लिखने भी लगी थी। मेरी रचनायें छपीं। याज्ञिक जी पास ही के शहर राजनाद गाँव में रहते थे। मेरा पता देखा। चिट्ठी लिखी। मिलने बुलाया। उन्हें पता चला कि ट्यूशन करके गुजारा कर रही हूँ तो पीछे पड़ गए... "इस तरह कहीं जीवन चलता है। अपने हक के लिए केस करो।" मैं एकदम हाहाकार कर उठी थी... "मैं नहीं कर सकती सर। जो थोड़ा सा जीवन बचा है उसे मैं अपने साहित्य प्रेम को देना चाहती हूँ। वे हाई कोर्ट, सुप्रीम कोर्ट जाने वाले लोग हैं। मैं हाई कोर्ट सुप्रीम कोर्ट के जंजाल में फँसकर समय बर्बाद नहीं कर सकती। आप खुद ही कहते हैं मैं बहुत अच्छा लिखती हूँ।" वह केस करने वाली उनकी बातें अभी ठंडी नहीं पड़ी थीं कि यह नौकरी वाला प्रस्ताव। प्रस्ताव क्या, दबाव। बुजुर्ग हैं, लेखक हैं। समझते हैं... मैं उनकी बात मान लूँगी। सोचती रही कि फिर जोर डालेंगे तो मैं कैसे टरकाउंगी। शाम को रेवा की भतीजी के जन्मदिन का आयोजन था। हँसते खेलते वहाँ से विदा हो रही थी कि रेवा के चाचाजी आ गए। बोले... "'भल्ला स्कूल' की 'वेकैंसी' निकली है। तुम आवेदन कर दो।"

पास खड़ी उसकी माँ और भाभी भी बोलीं... "हाँ...हाँ...जरूर आवेदन कर दो।"

सुनते ही इतना बढ़िया खाया पिया हवा हो गया। वे लोग मुझे इसी लायक समझते हैं। बोली... "जी।"

रात नौ बजे दरवाजे की घंटी बजी। दरवाजा खोला तो 'रेवा'।

"अरे, अभी कैसे!"

"दीदी, चाचाजी ने भेजा है"... उसने अखबार की कतरन मुझे दे दी।

मेरा चेहरा लटक गया। रेवा स्कूल के दिनों में मुझसे दो कक्षा नीचे पढ़ती थी। सो मुझे दीदी कहती है। अभी अनुभागीय अधिकारी के पद पर है। भीतर आकर बैठ गई तो मैंने कहा... "रेवा सच बताओ, क्या तुम भी चाहती हो कि मैं नौकरी करूं।"

"कर लीजिए दीदी।"

"तुम तो खुद जानती हो। बचपन से मुझे साहित्य प्रेम रहा है। अभी मुझे मौका मिला है। क्या मेरे लिए वह अच्छा रहेगा।"

"नहीं, अच्छा रहेगा। अभी आप अकेली हैं। बाहर निकलने से आपका एक सर्किल हो जाएगा। लोग जानेंगे कि प्राचार्या हैं, तो समाज में आपका 'स्टेटस' बढ़ेगा। ट्यूशन भी खूब मिलेंगे।"

"मुझे स्टेटस की परवाह नहीं। जीवन भर मैंने इन स्टेटस वालों को ही तो भुगता है। अब मैं कुछ सार्थक करना चाहती हूँ।"

"वह भी कर लीजिएगा। अभी तो आप आवेदन कर ही दीजिए। कुछ और बिल्कुल मत सोचिए।"

रेवा चली गई। मगर मुझे हिला गई। रेवा से मैं अक्सर अपनी परेशानियों का जिक्र करती रहती हूँ। इन दिनों परेशानियाँ फीस को लेकर हैं। जो चार पाँच लड़के पढ़ने आते हैं, वे भी फीस देने में कोताही करते हैं। मांगने में मुझे घोर यातना होती है। इतने पैसे वाले घरों के लड़के हैं। हीरो होंडा से आते हैं। देखते हैं बेहद जीर्ण शीर्ण घर में रहती है टीचर। मेहनत से पढ़ाती है। बड़ी मुश्किल से फीस के लिए बोलती हूँ तो डॉज दे देते हैं। इतनी भक्ति दिखाते हैं, पर भीतर से कितने अमानवीय। यही सब कल्पना मैं रेवा को सुनाती रही हूँ। उसको यही निदान सूझा कि नौकरी कर लूं।

मगर रेवा ही नहीं और लोग भी बोलने लगे... भल्ला स्कूल की वैकेंसी निकली है दीदी, आपने आवेदन किया कि नहीं?...

मेरा दिमाग बुरी तरह से परेशान। मैं ये मानती रही हूँ कि जीवन की व्यवहारिक बातें समझने में मैं भोंदू हूँ। इसलिए मुझे अपने मित्रों और शुभचिन्तकों की बातें मान लेनी चाहिए। रेवा तो कह ही रही है। उसकी माँ ने भी

कहा है। उसकी भाभी ने भी कहा है। अब तो सभी शुभचिंतक कह रहे हैं। याज्ञिक जी तो बेचारे परेशान हैं ही कि कहीं मैं आवेदन ही न करूँ। मगर मेरा मन है कि मानता ही नहीं। तब?

तब क्यों न मैं 'मिश्रा सर' से चर्चा कर लूँ। मिश्रा सर साहित्य के प्रोफेसर रहे हैं। अवकाशप्राप्त हैं। बेटी की मृत्यु के बाद शायद मुझमें ही बेटी की छवि देखते हैं। अक्सर ही मेरे पास बैठकर जिगरा का सारा दु:ख उड़ेलते रहे हैं... "कुछ नहीं कर सका मैं, सिर्फ नौकरी का होकर रह गया। कभी इतने महान साहित्यकारों के सानिध्य में रहा। इतनी सुंदर.सुंदर रचनाएँ लिखीं। पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण नौकरी करनी पड़ी। नौकरी मेरे रचनाकार को खा गई।" वे अपनी पुरानी डायरी के जर्जर पन्ने खोल.खोलकर अपनी रचनाएँ सुनाने लगते।

"सचमुच कितनी अच्छी रचनाएँ लिखते थे सर आप"... उनके घर बैठकर मैंने चर्चा छेड़ दी... "अगर वह रचना प्रक्रिया जारी रहती तो आप आज कहाँ से कहाँ पहुँच गए होते। कितने संतुष्ट व्यक्ति होते आप। नौकरी प्रतिभाओं को खा जाती है। देखिये न, रेवा पढ़ाई के दिनों में कितनी प्रतिभाशाली थी। मगर नौकरी मिली तो कभी इस शहर तो कभी उस शहर। बोरिया.बिस्तर बाँधते ही जीवन कटा उसका। नौकर.चाकर घर लूटते रहे। रिश्तेदार अलग खसोटते रहे। फुलफिलमेंट के नाम पर उसके पास क्या है... बस बैंक में कुछ लाख रुपये। या शायद करोड़ हों। उसपर भी बदनीयत रिश्तेदारों की घात। उसकी भाभी का हाल तो और बुरा। परिवार कहीं, नौकरी कहीं। भागदौड़ करते दिन बीतता है। भागदौड़ करते रात। बेटियाँ बद्जबान। नौकर.चाकर बेलगाम। पति परेशान। खुद हलाकान। घर युद्ध का मैदान। आपने तो इन दोनों (पति–पत्नी) को पढ़ाया है। कितने प्रतिभाशाली थे दोनों। मगर नौकरी खा गई सारी प्रतिभा। मगर हाँ, शानदार नौकरी है, स्टेटस है, यही एक मूर्ख शान...।"

सर के हृदय में बसे दु:खों का लावा फूट पड़ा।... "नौकरी का भयानक आकर्षण खा जाता है लोगों को। उस आकर्षण की गिरफ्त में यह भी नहीं सूझता कि यह नौकरी मेरी स्वाभाविक प्रतिभा को खा तो नहीं जाएगी। प्राइवेट कॉलेज की नौकरी खा गई मुझे, एक मिनट समय नहीं देते थे वे लोग...।"

"देखिए न सर... मैं मौका चूकी नहीं... यही रेवा जिसने नौकरी करके अपनी जिंदगी बर्बाद कर डाली है, मेरे पास भल्ला स्कूल की 'आवश्यकता है' की कतरन लेकर आई थी। वे अँग्रेजी माध्यम की शाखा खोल रहे हैं। उन्हें प्राचार्य की आवश्यकता है। कह रही थी... आवेदन कर दीजिए दीदी। उसकी तो माँ, भाभी, चाचा–चाची सब पीछे पड़ गए हैं... करो आवेदन, करो आवेदन... पल भर को सब हतप्रभ। प्रोफेसर मिश्रा, उनकी पत्नी, उनका युवा पुत्र। बताइये आंटी, मैंने उनकी पत्नी की ओर रुख किया... क्या मुझे इस उम्र में नौकरी करनी चाहिये जब मेरे पास अनुभवों का खजाना है। संवेदनाओं का बाँध उमड़ पड़ने के लिए मचल रहा है। सर खुद कहते हैं कि मेरा लेखन राष्ट्रीय स्तर का है...।

"नहीं, तुमको कर लेनी चाहिए... पलक झपकते ही उनकी विचारधारा बदल चुकी थी... अगर नौकरी मिल रही है तो जरूर कर लो... वे सिर हिलाते हुए कहने लगीं... तुम्हारे लिए अच्छा रहेगा। दो पैसा हाथ में आयेगा। तुम्हारा समय अच्छा कटेगा। लोगों में सम्मान बढ़ेगा।"

मुझे समझ में नहीं आया। अभी.अभी बतरस का जो सरगम चल रहा था, उसका सुर कैसे बदल गया।

"आंटी, प्राइवेट स्कूल वाले बँधुआ मजदूर बना लेते हैं। आठ घंटे पढ़ाओ फिर कापियाँ जाँचो ढेर सारी। फिर प्राचार्य हैं, तो और भी जिम्मेदारी। उनके अपने भी कुछ.कुछ कार्यक्रम होते रहते हैं..."

"अरे कुछ नहीं, हमारी लड़की तो पढ़ाती थी उस स्कूल में। कोई परेशानी नहीं हुई। भल्ला स्कूल में सब पैसेवालों के लड़के पढ़ते हैं। तुमको तो खूब ट्यूशन मिलेगा। पैसा बरसेगा।"

मैं हतवाक् बनी सर की तरफ देखने लगी। सर तो मेरी रचनात्मक प्यास से परिचित हैं। बोली... "सर, आप क्या समझते हैं। मुझे नौकरी करनी चाहिए।"

सर के दिमाग में कुछ और ही चल रहा था। बोले... "जरूर करनी चाहिए। जल्दी आवेदन कर दो। मैं श्रीवास्तव साहब से बात करता हूँ। सब कुछ तो उन्हीं के हाथ में है। हो जाएगा तुम्हारा...।"

"सर... मैं असहाय सी कहने लगी... अगर मैं स्कूल ज्वाइन कर ली तो मैं उसी की भलाई, उसी की प्रगति में अपने.आप को झोंक दूंगी, क्योंकि यह मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। कोई काम करो तो पूरे दिल से, पूरी ताकत से, पूरी क्षमता से।"

"अच्छा है न। तुम प्राचार्या होगी तो स्कूल का नाम हो जायेगा। शान हो जायेगी। तुम्हारी भी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।"

"और मेरा लेखन कार्य सर?"

"वह सब हो जायेगा। एक बार आदमी करने लगता है। आदत पड़ जाती है तो सब समय निकल आता है। बल्कि कई बार तो काम ज्यादा बढ़िया से होने लगता है।"

"भल्ला स्कूल बहुत अच्छा स्कूल है दीदी... उनका नवयुवक पुत्र मुझे देखता हुआ कहने लगा... आपका हो जायेगा। 'भल्ला शिक्षण संस्थान' के अध्यक्ष अरोरा साहब हैं। वे तो आपके पूरे परिवार को जानते हैं। एक सदस्य गुरुचरण सिंह हैं, वे भी आपको जानते हैं, एक अन्य सदस्य...

वह बड़ी गंभीरता से पिता को बताने लगा, कौन–कौन हैं प्रबंधक समिति में। किससे.किससे कहलवाया जा सकता है। अँग्रेजी माध्यम खोलने के लिए ऐसा प्राचार्य चाहिए जिसकी अँग्रेजी बहुत बढ़िया हो। दीदी की अँग्रेजी है ही बढ़िया...।

'भल्ला स्कूल के प्राचार्य' सुनते ही उन सबका रुख बदल चुका था। वे सब उत्साह में आ चुके थे... नामी स्कूल है। मौका एकदम नहीं चूकना चाहिए। फौरन आवेदन कर दो। तुम्हारा एकदम हो जायेगा। तुमसे अच्छा प्राचार्य उन्हें और कहाँ मिलेगा। सर कहने लगे... मैं श्रीवास्तव साहब से बात करता हूँ। उन्हीं की तो चलती है।

मेरा मिजाज उखड़ चुका था, पर डावाँडोल भी होने लगा था। मिश्रा परिवार मेरा बेहद हितैषी था। रेवा का परिवार तो था ही। श्रीवास्तव सर से बहुत मिलना.जुलना नहीं था। फिर भी मेरे हितैषी तो थे ही। वे बरसों से हिंदी माध्यम वाले भल्ला स्कूल के प्राचार्य रहे हैं। उस स्कूल से संबंधित हर बात की जानकारी उन्हें है। वे सही सलाह देंगे।

अगले दिन मिश्रा सर मुझे श्रीवास्तव सर के पास ले गए। श्रीवास्तव सर एकदम उत्साहित हो उठे... "मैं आज ही बात करता हूँ अरोरा साहब से... कहाँ इधर.उधर प्रिंसिपल खोज रहे हैं आप लोग। इससे अच्छी प्रिंसिपल और कहाँ मिलेगी।"

"मगर सर... मैं कहने लगी... आप जानते हैं कि मेरी रुचि साहित्य में है। प्राचार्य बन जाने से मैं अपने साहित्य प्रेम को समय नहीं दे पाउंगी जिसके लिए मैं जनम भर तरसी हूँ।"

"अरे सब हो जायेगा। आप तो यह मौका छोड़ो मत।"

वे मुझे लेकर अरोरा साहब से मिले। अरोरा साहब भारी व्यवसायी हैं। मुख्य रूप से चिंतित थे कि अँग्रेजी माध्यम का स्कूल खोलने जा रहे हैं तो स्कूल में अँग्रेजी का ही वातावरण होना चाहिए। वे बताते रहे कि शहर में कितने ही स्कूल, अँग्रेजी माध्यम वाले कहलाते हैं। मगर वहाँ के छात्र एक वाक्य

अँग्रेजी नहीं बोल पाते। यहाँ तक कि शिक्षक भी नहीं बोल पाते सही अँग्रेजी। हमारा स्कूल सही अर्थों में अँग्रेजी माध्यम स्कूल हो। हम तो आपको ही रखना चाहेंगे... वे पूरी विनम्रता से कह रहे थे... क्योंकि आपको, आपके पूरे परिवार को यहाँ सब जानते हैं। पर बोर्ड में और भी सदस्य हैं।

"सब सेट है, आप आवेदन डाल दो... अरोरा साहब से मिलकर लौटते हुए श्रीवास्तव सर कह रहे थे।"

"आवेदन कर दिया या नहीं"... शाम को याज्ञिक जी का फोन आ गया।

"जी सर"... मन मारे कह दिया। रात रेवा आई, घर में सब पूछ रहे हैं, आपने आवेदन किया या नहीं।

"कर दिया भई..." मैंने चिढ़कर टाला।

"आवेदन कर दिया?... मिश्रासर।

"आवेदन कर दिया?... अड़ोसी.पड़ोसी।

"आवेदन कर दिया... रास्ता चलता परिचित।

मुझे लगने लगा, मैं परवश मकड़जाल में फँसती जा रही हूँ। इसलिए मैं अपने परिचित रचनाकार बंधुओं से फोन कर पूछने लगी... क्या मुझे इस उम्र में एक प्राइवेट स्कूल की नौकरी कर लेनी चाहिए। जिम्मेदारी वाली नौकरी? प्राचार्य की।

अलग.अलग शहरों में रहनेवाले रचनाकार बंधुओं का आश्चर्यजनक रूप से एकमत... "जरूर कर लेनी चाहिए। आर्थिक चिंता आदमी को खा जाती है। भल्ला स्कूल नामी स्कूल है। इतने ट्यूशन मिलेंगे कि जिंदगी में कभी पैसे की चिंता नहीं होगी।"

"और मेरा लेखन कार्य?"

"अरे वह होता रहेगा।"

कर लेनी चाहिए, कर लेनी चाहिए... दशों दिशाओं से मानो यही स्वर गूंज रहा था बल्कि सबका स्पष्ट मत... "भल्ला स्कूल की यह वैकेंसी निकली ही आपके लिए है... शहर में इतनी अच्छी अँग्रेजी वाली, स्कूल चला सकने की क्षमता रखने वाली, परिपक्व उम्र की और कौन महिला है।"

और जो दिमाग कभी नौकरी की तरफ जाता ही नहीं था, उसे अंधा कुआँ समझता था, वह मनुहाये सा होने लगा। अरोरा साहब कह रहे थे... स्कूल सुबह आठ बजे से शाम चार बजे तक रहता है। चार बजे के बाद तो समय अपना ही रहेगा। एक घंटा आराम करो और बस पढ़ो.लिखो। पढ़ना भी मेरे लिए बहुत जरूरी है। ढेर सारी साहित्यिक, गैर साहित्यिक पत्र.पत्रिकाएं पढ़े बगैर मुझे चैन नहीं। पढ़ने लगती हूँ तो लिखना नहीं होता। ठीक है कभी पढ़ूंगी, कभी लिखूंगी। मगर फिर लड़के ट्यूशन के लिए आने लगेंगे। आयेंगे तो लौटाया भी तो नहीं जायेगा। पैसों की कितनी किल्लत है। पुरखों का यह पुराना घर। जगह.जगह से दरक रहा है। मरम्मत कराने में चालीस.पचास हजार लग जायेंगे। ऐसा करूंगी, शाम को लड़कों को पढ़ाया करूंगी। अपने पढ़ने.लिखने के लिए रात का समय या फिर सुबह तड़के का। आखिर इतने लोग नौकरी करते हुए रचनाकार बने हैं कि नहीं। बढ़िया लिख रहे हैं। पढ़ रहे हैं। साहित्यिक गतिविधियों में जमकर हिस्सा ले रहे हैं। जोरदार भाषण दे रहे हैं। एक मैं हूँ घोंचू की घोंचू। अगर मेरी भारी साहित्यिक उपलब्धियाँ होतीं तो मुझे कोई सलाह थोड़े ही देता। खासकर रचनाकार बंधु ऐसी सलाह कभी नहीं देते। वास्तव में जब साहित्यिक जगत में मेरा कोई विशेष स्थान नहीं है तो मुझे नौकरी कर ही लेनी चाहिए। प्राचार्या बनते ही नजर तो बदलेगी ही लोगों की। खासकर इन मुहल्ले वालों की। मुझे खंडहर होते पुराने घर में दो.चार बच्चों को पढ़ाकर गुजारा करने वाली गरीब गुजरी दयनीय औरत समझते हैं। दयनीय क्या तुच्छ। अपदार्थ। दंग रह जायेंगे। एक तो नामी स्कूल की प्राचार्या, दूसरे ट्यूशन के लिए अमीर घरों के शानदार पोशाकों में बाइक दनदनाते आते स्वस्थ सुंदर छात्र। पैसा तो बरसेगा ही, मेरा तो रुतबा ही बहुत बढ़ जायेगा। शहर के सामाजिक, सांस्कृतिक आयोजनों में मुझे आमंत्रित किया जायेगा। प्राचार्या के रूप में मेरा परिचय कराया जायेगा। अगर रचनाएँ भी छपने लगेंगी तो मेरी प्रतिष्ठा में चार चाँद लग जायेंगे। अभी तो रचनायें छपती हैं तो कोई जानता तक नहीं। जो जान भी लेते हैं वे कभी चर्चा तक नहीं करते। महत्वहीन तुच्छ समझते हैं मुझे। एकबारगी ही महत्वपूर्ण हो जाऊँगी सबके लिये। छोटी रचना तक बड़ी बात हो जायेगी। प्राचार्या एवं लेखिका बन जाने से लोग अपनी बेटियों के सामने मेरा आदर्श रखेंगे। विशेषकर ससुराल से, परिवार से पीड़ित, प्रताड़ित महिलाओं को राह दिखाने के लिए मुझे प्राचार्या बन ही जाना चाहिए।

और मन को मजबूत कर मैंने आवेदन कर ही दिया। साक्षात्कार के लिए बुलावा भी आ गया।

मेरे हाथ.पाँव ठंडे होने लगे। खुद को आश्वस्त करने लगी... अरोरा सर ने कहा ही है कि मुझे ही लेना चाहेंगे। श्रीवास्तव सर तो चाहते ही हैं मुझे। फिर भी मुझे अच्छे से तैयारी कर लेनी चाहिए। अँग्रेजी साहित्य की पुस्तकें हैं नहीं यहाँ मेरे पास। कलह.कवलित ससुराल की गलाजत में बरसों पिसते अँग्रेजी साहित्य भूल ही गई। जो दो.चार लड़के पढ़ने आते हैं, अधिकतर उन्हें व्याकरण और पाठ्यक्रम की चीजें ही पढ़ाती हूँ। फिर भी मैं जो पढ़ने लायक सामग्री मिली, पढ़ने लगी... मुहावरे, लोकोक्तियाँ, समानार्थी शब्द, विरुद्धार्थी शब्द, जाने क्या पूछ दें...।

साक्षात्कार के दिन सुबह से हालत खराब। दोपहर तीन बजे से साक्षात्कार था। जैसे.तैसे तैयार हुई। पूरी सादगी से। स्कूल पहुँची तो पता चला कि लिखित परीक्षा शुरु हो गई है। परीक्षाहॉल में पहुँची तो देखा, पाँच.छह अति स्वस्थ सुंदर युवक.युवतियाँ कुछ लिखने में मशगूल हैं। निरीक्षक ने मुझे भी प्रश्न.पत्र और उत्तर पुस्तिका दे दी। एक कुर्सी पर बैठकर मैंने सामने मेज पर उत्तर पुस्तिका रखी और प्रश्नपत्र पढ़ने लगी। पहला ही प्रश्न व्याकरण का था, फिर गणित, फिर एक निबंध। समय तीस मिनट। देर से वैसे ही पहुँची थी, सो गणित में मैंने समय नहीं लगाया। व्याकरण का प्रश्न बना दिया और निबंध लिखने लगी। सोचने का समय था ही नहीं। बस लिखे चली गई।

उत्तर पुस्तिकाएँ जमा कर हम हॉल में बैठे। दो युवक, तीन युवतियाँ, एक मैं बुजुर्ग महिला। मैंने खुद होकर उनलोगों से बात की। एक युवक ने बताया कि चूंकि उसकी पत्नी यहाँ नवोदय विद्यालय में शिक्षिका है, वह यहाँ कम वेतन में भी पढ़ा लेगा। विशेषकर इसलिए कि यहाँ ट्यूशन अच्छे मिलते हैं। दूसरे युवक ने बताया कि वह कई निजी स्कूलों में पढ़ा चुका है। निजी स्कूलों में भल्ला स्कूल का नाम प्रतिष्ठित है, इसलिए यहाँ भाग्य आजमाने आया है। वैसे साफ बात, असली आकर्षण तो ट्यूशन का है। एक युवती स्कूल के प्रबंधक समिति के ही सदस्य की बहू थी। नाम अभिनव कौर। अभी ही एम.ए. अँग्रेजी की परीक्षा दी थी। बाकी दो युवतियाँ शहर के नामी व्यापारी परिवारों से थीं। उन्होंने बताया कि उनके ससुराल वालों का कहना है, तनख्वाह की परवाह नहीं, प्राचार्या बन जाने से समाज में प्रतिष्ठा बढ़ेगी। मैंने उन लोगों से कहा कि आप सभी लोग इस पद के उपयुक्त हैं। बल्कि ज्यादा ही उपयुक्त हैं।

अभी हम बातें कर ही रहे थे कि चाय आ गई। नाश्ता भी। लानेवाले सज्जन ने निवेदन किया कि जल्दी ले लीजिए क्योंकि इसके तुरंत बाद साक्षात्कार शुरु होने वाला है।

साक्षात्कार शुरु भी हो गया।

सबसे पहले एक युवक को बुलाया गया। हम धड़कते दिल से उसके आने की प्रतीक्षा करते रहे। लगभग पंद्रह मिनट बाद वह आया। सब बोले... कैसा रहा।

बोला... सो... सो।

"क्या पूछ रहे थे?"

सभी तरह के सवाल। अँग्रेजी साहित्य के दो प्राध्यापक हैं, वही ज्यादा सवाल कर रहे थे।

मैं सोच में पड़ गई। मैंने पचीस साल पहले अँग्रेजी में एम.ए. किया था, मगर अब तो सब भूल गई हूँ।

इसके बाद उस बहू अभिनव कौर का नंबर था। वह गई। आई तो काफी खुश थी, बताई कि उससे सारे सवाल अँग्रेजी साहित्य के बारे में किए गए। मैं तो परीक्षा देकर ही आई हूँ। सो मुझे सब याद थे। सभी के जवाब दे दिए। सिर्फ एक.दो दूसरे प्रश्न नहीं बने।

मेरे हाथ.पाँव ठंडे होने लगे।

तभी मेरी बुलाहट हुई।

इतनी सुंदर, अँग्रेजी साहित्य के ताजा ज्ञान से लबरेज, उत्साह से भरी नवयुवती के बाद, ढलती काया, उम्रदार चेहरा, खिचड़ी केश और पढ़ा.लिखा सब भूला हुआ हुलिया लेकर साक्षात्कार हॉल में जाते हुए मेरा हृदय रो रहा था। उस रुदन को एक तरफ ढकेलकर मैं पहुँची... "मे आई कम इन सर...।"

"आइये, बैठिये।"

हॉल में छह.सात सज्जन अर्धवृताकार स्थिति में कुर्सियों में बैठे हुए थे। उनमें श्रीवास्तव सर भी थे। अरोरा सर भी। स्थानीय कॉलेज के दो अँग्रेजी के प्राध्यापक भी। प्रबंध समिति के कुछ सदस्य भी। मैं उनके सामने की कुर्सी पर बैठ गई।

प्रश्नोत्तर अँग्रेजी में हो रहे थे।

अँग्रेजी के एक युवा प्राध्यापक ने पहला प्रश्न पूछा... "आपने एम.ए. में स्पेशल पेपर क्या लिया था?"

"अमेरिकन साहित्य। सर मैं निवेदन करना चाहती हूँ कि मैंने पचीस साल पहले एम.ए. किया था। अब मैं सब भूल गई हूँ। कृपया साहित्य से संबंधित प्रश्न मुझसे न पूछें।"

युवा प्राध्यापक ने आँखें गड़ाकर मुझे देखा... "मगर आप अँग्रेजी पढ़ाती तो हैं।"

"हाँ, हाई स्कूल के छात्रों को। अधिकतर व्याकरण और उनके कोर्स में जो है, वही सब।"

उसके बगल में बैठा एक अन्य सरदार सदस्य आँखें गड़ाये मुझे देख रहा था। बोला... "आप 'याक्' से क्या समझती हैं?"

"यह कोई स्लैंग है। मैं नहीं जानती।"

"आजकल अँग्रेजी भाषा में उपयोग में आने वाले कुछ सामान्य स्लैंग शब्द बताइये।"

"सर मैं स्लैंग शब्दों के बारे में नहीं जानती।"

"मगर यह बच्चों की किताब में है।"

"अगर मुझे छोटे बच्चों को पढ़ाने कहा जाता है तो मैं सीख लूँगी।"

एक सज्जन ने मुझसे पूछा... "शिक्षा के बारे में आपके क्या विचार हैं।"

सोचने का तो समय ही नहीं था। जो मन में आया, बोले चली गई और शायद अच्छा ही बोली।

मगर वह स्लैंग पूछनेवाला फिर पूछने लगा... "'गो बनाना' का क्या मतलब है?"

मैंने कहा... "सर मैंने बताया न कि मुझे स्लैंग के बारे में नहीं मालूम है।"

एक अन्य सज्जन ने पूछा... "प्राचार्य के रूप में शिक्षकों को आप कैसे मोटीवेट करेंगी।"

"पहले तो मैं आपकी इस कमिटी से ही उम्मीद रखूँगी कि आप मोटीवेटेड शिक्षकों को ही रखें। फिर हम सब शिक्षक मिलकर कोई कार्यक्रम बना लेंगे।"

एक अन्य सज्जन ने पूछा... "हमारे विदेश मंत्री कौन हैं?"

मैंने बता दिया।

"विदेश सचिव कौन है?"

"मुझे ध्यान नहीं।"

युवा प्राध्यापक ने फिर पूछा... "मैथ्यू अर्नाल्ड के काव्य की प्रमुख विशेषताएं बता सकती हैं।"

"अभी मुझे इतना ही ध्यान है कि उनके काव्य में अकेलेपन, अलगाव और आधुनिक जीवन की खामियों का चित्रण है।" वह प्रश्न पर प्रश्न दागने लगा तो बोली कि सर मुझे याद नहीं।

"वर्ड्सवर्थ के 'पोइटिक डिक्शन' के बारे में कॉलरीज का क्या मत था?"

"कॉलरीज ने कुछ आलोचना की थी। सही शब्द याद नहीं।"

दूसरा प्राध्यापक पूछने लगा... "विक्टोरियन साहित्य की प्रमुख विशेषताएं?"

"विक्टोरियन साहित्य बहुआयामी साहित्य है। कविता, नाटक, उपन्यास, आलोचना सभी विधाओं में प्रचुर रचनाएं हुई हैं। लगभग सारा समाज ही उस समय हो रहे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से प्रभावित था। सो उस समय का सामाजिक जीवन जो साहित्य में है, उसमें धर्म और राजनीति पर भी सवाल उठाये गये हैं। इस समय मैं अधिक नहीं बता सकती।"

मगर वे लगातार पूछते रहे, कभी टेनिसन, ब्राउनिंग पर, कभी ऑस्करवाइल्ड और थॉमस हार्डी पर।

मुझे रोना आने लगा। बोली... "सर मैंने कहा था न, मुझे पढ़े अरसा हो गया है। इस समय मुझे कुछ याद नहीं।"

अब एक अन्य सज्जन... "आपकी हॉबी क्या है?"

"पढ़ना।"

"आपने इन दिनों कौन सी किताब पढ़ी है। उसके बारे में बतायें।"

"मैंने इन दिनों अमेरिकन लेखिका 'ऑयन रैंड' की किताब पढ़ी है... 'फाउन्टेन हेड'। इसमें लेखिका ने बताया है कि रचनात्मकता ही मनुष्य की ऊर्जा का स्रोत होती है।"

वह स्लैंग के बारे में पूछने वाला फिर कोई स्लैंग पूछने लगा।

"सर मैंने कहा न मैं स्लैंग शब्द नहीं जानती।"

अँग्रेजी साहित्य से संबंधित प्रश्नों का मैं जवाब नहीं दे पा रही थी। स्लैंग के बारे में भी जवाब नहीं दे पा रही थी। एक चुपचाप बैठे सज्जन ने पूछा... "आजकल लड़के अनुशासनहीन हो गए हैं। आप अनुशासन कैसे लागू करेंगी?"

"कड़ाई से।"

"क्या आप बच्चों को सजा देना जरूरी समझती हैं।"

"कभी.कभी। यह स्थिति पर निर्भर करता है।"

उनलोगों को मुझसे संतोषजनक जवाब नहीं मिल रहे थे। शायद

मुझे उबारने के लिए श्रीवास्तव सर ने पूछा... "प्रेम और ईश्वर के बारे में आपका क्या कहना है?"

मैं किसी भी प्रश्न का जवाब बिना सोचे–समझे ही दे रही थी। सोचने का समय भी नहीं था। ऐसे समय सोचने से कुछ सूझता भी नहीं। सो जो मुँह में आया बोले चली गई... "प्रेम के बारे में कवि, लेखक, संगीतकार, चित्रकार आदि सदियों से अपनी कला के माध्यम से अभिव्यक्ति देते रहे हैं, मगर कोई यह नहीं कह पाया कि उसने प्रेम को पा ही लिया है। इसी तरह अनेक साधु.संत. महात्मा अपने तरीके से ईश्वर की तलाश करते रहे हैं। पर कोई यह नहीं कह पाया कि उसने ईश्वर को पा लिया है। मेरी समझ से प्रेम एक तलाश है। ईश्वर भी एक तलाश है।"

मुझे लगता है, प्रेम और ईश्वर की ऐसी समानता सुनकर श्रीवास्तव सर ने जरूर मन ही मन सिर पीट लिया होगा।

अब सब चुप हो गये। एक.दूसरे को अर्थभरी निगाहों से देखने लगे। मैं समझ गई कि मेरा इंटरव्यू अच्छा नहीं गया है।

अब अध्यक्ष की बारी थी। अत्यंत विनम्रता से बोले... "देखिये, हमारे पास फंड बहुत नहीं है। हम वेतन तो ज्यादा नहीं दे पायेंगे।"

"फिर भी कितना?"

"आप कितना उम्मीद करती हैं।"

"कम से कम अपने जीवनयापन के लायक।"

"हम तो पंद्रह सौ से अधिक नहीं दे पायेंगे।"

मैं आसमान से गिरी। ये इंटरव्यू, ये प्रश्न दागते लोग, ये तामझाम, सब नाटक लगने लगा। प्राचार्य की जिम्मेदारी मजाक होती है। मैं अपनी रचनात्मकता को, ऊर्जा को, अपने जीवन भर के अनुभवों को इनका स्कूल बनाने में लगाउंगी और पाउंगी क्या?... ये अँग्रेजी साहित्य के प्रश्न दागने वाले, ये स्लैंग के प्रश्न धरे बैठे, मेरा मनोबल गिराने पर आमादा, मुझे अहसास कराने पर आमादा कि मुझे कुछ नहीं आता, सब मुझे निहायत तुच्छ लगने लगे, निहायत बकवास से, जो बड़े ठसके से वहाँ इंटरव्यू लेने चले आए थे जहाँ शिक्षक को पेट भरने लायक वेतन तक नहीं दिया जाता।

मैंने तीव्र दृष्टि से उन प्रश्न दागने वालों को एक.एक कर देखा। उनकी आँखों में घबराहट उभरने लगी कि अध्यक्ष ने जाने का इशारा कर दिया... "धन्यवाद मैडम।"

विजयी भाव से बाहर आकर मैंने बाकी प्रतिभागियों को बता दिया... मेरा इंटरव्यू ठीक नहीं हुआ।

पर एक अपमानजनक इंटरव्यू भुगतने का दु:ख सालता रहा मुझे। कभी.कभी यह भी लगता कि अगर अभी भी नियुक्ति पत्र मिल जाये तो यह दु:ख धुल जायेगा। आ भी सकता है नियुक्ति पत्र। याज्ञिक जी मेरे लिए कोशिश कर ही रहे होंगे। श्रीवास्तव सर ने कहा ही था, सब चीजें सेट हैं। अध्यक्ष अरोरा साहब बोले ही थे, हम तो आपको ही रखना चाहेंगे। मिश्रा सर, रेवा के चाचाजी भी दौड़.धूप कर ही रहे होंगे, आखिर इन्हीं लोगों ने मुझे इस कदर उकसाया था। जरूर ये लोग कुछ न कुछ कर रहे होंगे।

मगर ये लोग तो जैसे मुझे अंधे कुएं में धकेलकर गायब। झाँकते तक नहीं। अपमान, ग्लानि में झुलसती पड़ी हूँ मैं अकेली। निस्सहाय। एक.एक दिन भारी।

कि पड़ोसन ने ही झाँका... आपको पता चला कि नहीं दीदी, भल्ला स्कूल के प्राचार्य का चयन हो गया है। अभी.अभी हमें खबर मिली, कोई अभिनव कौर बनी हैं प्राचार्या। सहानुभूति से कहने लगी... "हम लोग तो जानते ही थे, किसी अपने को ही रखेंगे। इंटरव्यू तो नाटक है।"

यह बेपढ़ी औरत जानती थी 'किसी अपने को रखेंगे'। पर क्या याज्ञिक जी नहीं जानते थे। मिश्रा सर नहीं जानते थे। श्रीवास्तव सर नहीं जानते थे। रेवा के चाचाजी नहीं जानते थे। जानते थे तो क्या ये अपनी ही 'औकात' नहीं जानते थे। बरसों की गलीज जिंदगी के बाद दो.चार लड़कों को पढ़ाकर खुद लिखती–पढ़ती शांतिपूर्वक जी रही थी, लोगों से देखा नहीं गया। जबरन ढकेल दिया अंधे कुएं में।

फटे हृदय से दर्द का लावा बह निकला। काश कि मौत ही आ जाये!

मौत तो नहीं आई, लड़के ही आ गये। हफ्ते भर की छुट्टी के बाद। किसी तरह उठी। निकली। पढ़ाने बैठी। पढ़ाते, समझाते, भीतर की दाह कम होने लगी। इतने दिनों में लड़के पिछला सबक भूल गये थे। बिगड़ी, तो बहाने बनाने लगे। एक से एक मजेदार बहाने। एक.दूसरे की पोल खोलने लगे। आखिर मुझे हँसी आ गयी। एक नया ही बोध जागा... 'मुझ ग्लानि में झुलसती हुई' का यही 'मल्हम है, पढ़ाना।' जीने के लिए तिनके का सहारा। सो अब रोज उन्हीं चार.पाँच लड़कों को कुछ विशेष ही प्रेम से पढ़ाने लगी। विशेष उत्साह भी, कैसे विषय को भरपूर आकर्षक बनाऊं। आकर्षक बनाने के लिए तरकीबें सोचती। पढ़ने की आदत थी ही, 'भूला हुआ अंग्रेजी साहित्य' भी बार.बार पढ़ने लगी। साहित्य तो फिर साहित्य है। आनंद बरसाता। मगन होकर आनंद छात्रों पर बरसाती। ज्ञानानंद में छात्र अभिभूत से हो उठते। अब उन लड़कों के साथ और भी लड़के आने लगे। देखते.देखते आठ, दस, पंद्रह, बीस। फिर तो छात्र. छात्राओं की, अभिभावकों की भीड़ ही भीड़। तड़के सुबह से रात गये तक कई. कई बैच। छात्र विभिन्न स्कूलों के होते। कॉलेजों के भी। अपने शिक्षकों से ट्यूशन न पढ़कर मुझसे पढ़ने आते। अग्रिम फीस धरा देते। अपने शिक्षकों को मुँह पर कह देते... "सर आप क्या पढ़ाते हैं, आपको पढ़ाना सीखना चाहिए हमारी मैडम से।" सबसे ज्यादा छात्र आने लगे 'भल्ला स्कूल' के। मजे की बात, जिन दो अँग्रेजी के प्राध्यापकों ने मुझे खूब रगड़ा था इंटरव्यू में, चले आ रहे हैं अपने बच्चों को लेकर। अब रेवा के चाचाजी क्यों पीछे रहते। मिश्रा सर क्यों पीछे रहते। श्रीवास्तव सर क्यों पीछे रहते। सब मनुहार कर रहे हैं अपने. अपने घर के बच्चों को लेकर... भई इसे तो दाखिला दे ही दो अपनी कक्षाओं में। यहाँ तक कि याज्ञिकजी भी फोन कर रहे हैं... कुछ छात्रों को भेज रहा हूँ, पाकर इन्हें जरूर ले लेना।

और मैं सोचती, इसी ट्यूशन के लिए ही न मुझे नौकरी करने कहा जा रहा था। नौकरी न मिलना तो मेरे लिए वरदान हो गया। पढ़ाती हूँ मस्त. मगन होकर। मेरे सिर पर कोई दबाव नहीं। तनाव नहीं। मेरे फैसले मेरे अपने हैं। सो अपने शेष जीवन के लायक पर्याप्त कमा लेते ही मैंने ट्यूशन कक्षाओं का दायित्व अन्य शिक्षकों को दे दिया और अपनी चिर अभीप्सित अभिलाषा पूरी करने में लग गई। मेरी कलम अविराम चलने लगी। बेशुमार अनुभवों के मोती संवेदनाओं के हृदयग्राही प्रवाह में बह निकले और अपनी आभा बिखेरने लगे। समाचार पत्रों के साहित्यिक पृष्ठों में पहले भी छपती थी, अब पत्रिकाओं में छपने लगी, फिर बड़ी पत्रिकाओं में। फिर सम्मान। फिर सम्मान ही सम्मान। पुरस्कार। फिर आमंत्रण ही आमंत्रण। कभी मुख्य अतिथि की आसंदी के लिए, कभी विशिष्ट अतिथि की आसंदी के लिए। कभी प्रेरणादायी उद्‌बोधन के लिए।...

और आज आए हुए हैं मेरे घर 'भल्ला स्कूल की प्रबंधक समिति के वे ही सदस्यगण' जो उस दिन साक्षात्कार में मेरी बखिया उधेड़ रहे थे... भल्ला स्कूल का 'रजत जयंती' समारोह बड़ी भव्यता से मनाने जा रहे हैं हम लोग मैम। आपसे निवेदन है कि मुख्य अतिथि की आसंदी आप ही सुशोभित करतीं। आपके प्रेरणादायी उद्‌बोधन से, आशीर्वाद से सभी लाभान्वित होंगे। छात्र, शिक्षक और हमारी प्रबंधक समिति भी।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303